जनजाति परिचिति

(तुलनामुलक अध्ययन)

लक्ष्मीकान्त मुतरूआर

जनजाति परिचिति

(तुलनामुलक अध्ययन)

लेखक

लक्ष्मीकान्त मुतरूआर

संपादक

- तुलसी महतो
- सुरेश महतो 'केटिआर'
- महेश मुतरूआर

परमाराध्य

स्वर्गीय पिता एवं स्वर्गीया माता

के श्री चरणों में

उत्सर्ग

सूची पत्र

—:—

लेखक परिचय

श्री लक्ष्मीकान्त मुतरूआर, पिता स्वर्गीय राखाल मुतरूआर गाँव : भण्डरो, पो0 : कुरा, जिला : बोकारो (झाड़खण्ड) के आदिम मूल निवासी हैं। जन्म तिथि 22 अप्रैल 1939 ई0 है। 1956 ई0 में मैट्रिक परीक्षोत्तीर्ण। 1957–59 सत्र में शिक्षक प्रशिक्षण केन्द्र, पिण्ड्राजोरा, जिला – बोकारो से प्रशिक्षण प्राप्तोपरांत 25 अगस्त 1959 में शिक्षक पद पर नियुक्ति । स्वतंत्र परीक्षार्थी के रूप में क्रमशः स्नातक की योग्यता हासिल। 1973 ई0 से विभिन्न मध्य विद्यालयों में प्रधानाध्यापक के पद पर सेवा उपरांत 30 अप्रैल 1999 ई0 को सेवा निवृत।

प्रारम्भ से ही समाज सेवी–शिक्षा प्रेमी थे। जनजातीय कबिला वाची कुड़माली भाषा के साहित्यकार एवं कवि थे। धनबाद से वीर भारत तलवार द्वारा सम्पादित "शालपत्र" एवं "झाड़खण्ड वार्ता" तथा पुरूलिया से सुनील कुमार महतो द्वारा सम्पादित "सारहुल" पत्रिका में श्री मुतरूआर जी कुड़माली भाषा साहित्य का स्तम्भ स्वरूप रहे है। इनके अलावे विभिन्न समय विभिन्न पत्रिकाओं में इनका स्वरचित कुड़माली प्रबंध–साहित्य एवं कविताएँ प्रकाशित हुए हैं। 1977 ई0 से जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग राँची विश्वविद्यालय राँची की उपदेष्टा समिति के सदस्य हैं।

कुड़माली भाङअर (Grammar) कुड़माली साड़ा आड़ांग (शब्द कोष), जनजाति कुड़मी (परम्पराएँ : जनजीवन : संस्कृति), कुड़माली भाषा तत्व एवं अन्य कई पुस्तकों की रचियेता थे। अर्थाभाव में प्रकाश्य अवस्था में पड़े हैं। इनकी स्वरचित कविताएँ राँची विश्वविद्यालय राँची, बिनोवा भावे विश्वविद्यालय हजारीबाग में आई0 ए0, बी0 ए0 तथा एम0 ए0 कक्षाओं में पढ़ाई जाती हैं। ये कुशल एवं धैर्य सम्पन्न व्यक्तित्व औंर जनजाति कुड़मी कबिला के सशक्त प्रहरी स्वरूप थे।

केशव चन्द्र टिडुआर
साधारण सम्पादक
आदिवासी कुड़मी समाज,
(झाड़खण्ड प0 बंगाल–उडिसा)
केन्द्रीय कमिटि।

संदेश

प्रिय लक्ष्मीकान्त मुतरूआर जी,

मुझे यह जानकर अति प्रसन्नता हुई कि आपके सार्थक प्रयास से "जनजाति परिचिति" (तुलनामूलक अध्ययन) नामक पुस्तक का प्रकाशन किया जा रहा है, जिसमें जनजाति परम्पराओं की अच्छी प्रस्तुति होगी। ऐसा मेरा विश्वास है। "जनजाति परिचिति" पुस्तक निश्चित रूप से झाड़खण्ड प्रदेश में काफी लाभदायक सिद्ध होगी।
ठसके प्रकाशन पर मेरी ओर से हार्दिक शुभकामनाएँ।

22-12-2001

भवदीय

अर्जुन मुण्डा
कल्याण मंत्री,

सराहनीय

झाड़खण्ड आदिवासी कुड़मी समाज द्वारा प्रकाशित लेखक श्री लक्ष्मीकान्त मुतरूआर जी की पुस्तक जनजाति परिचिति (तुलनामूलक अध्ययन) पढ़कर झाड़खण्ड के आदिवासी समुदायों के बारे में तुलनात्मक तथा तथ्यपरख जानकारी मिली। कहा गया है कि साहित्य ही समाज का दर्पण है। वास्तव में लेखक द्वारा इस पुस्तक में आदिवासियों की वास्तविक तस्वीर सामाजिक दर्पण में दर्शाया गया है।

झाड़खण्ड में अनुसूचित जनजातियाँ मुण्डा, सांथाल, उरांव, खड़िया, हो के साथ जनजाति कुड़मी कबिला का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर सभी पहलुओं में समानता दर्शाया है। तत्कालीन भारत सरकार तथा राज्य सरकारों की नोटिफिकेशनों में "कुड़मी जाति" भी अनुसूचित जनजाति सूची में रही है। "फुट डालो और राज करो" की नीति में ग्रसित होकर बिना किसी सरकारी नोटिफिकेशन के कुड़मी जाति को अनुसूचित जनजाति सुची से हटाया गया है।

झाड़खण्ड में आदिवासियों का अस्तित्व खतरे में पड़ गया है। उनकी पहचान निरंतर मिट रही है। आदिवासी अल्पसंख्यक हो गये हैं। झाड़खण्ड में जनजाति जनसंख्या को संतुलित करने के लिए जनजाति कुड़मी कबिला को पुनः अनुसूचित जनजाति सूची में शामिल करना जरूरी हो गया है।

टादिवासियों के बीच व्यापक एकता कायम करने के लिए यह पुस्तक नये इतिहास की रचना में सहायक सिद्ध होगा। लेखक के प्रति आभार प्रकट करते हुए धन्यवाद।

सूर्य सिंह बेसरा
सदस्य
जनजातीय परामर्शदातृ परिषद
झाड़खण्ड सरकार।

18-12-2001

एक मन्तव्य

जनजाति परिचिति (तुलनामूलक अध्ययन)
लेखक : लक्ष्मीकान्त मुतरूआर

मैंने बड़ी दिलचस्पी से लक्ष्मीकान्त मुतरूआर जी की छोटी पुस्तिका "जनजाति परिचिति" (तुलनामूलक अध्ययन) को पढ़ा। लक्ष्मीकान्त जी ने यह स्पष्ट दर्शाया है कि भारत की अनुसूचित जनजाति (मुण्डा, सांथाल, 'हो', खड़िया और उरांव) और कुड़मी समाज में लगभग पूर्ण समानता है। सामाजिक संगठन, रीति–विधि, सांस्कृतिक मूल्यों, अर्थव्यवस्था और राजनैतिक संगठन पर विस्तृत चर्चा एवं पूर्ण विश्लेषण सहित लेखक ने स्पष्ट दिखाया है कि कुड़मी समाज एक जनजाति समूह है। झाड़खण्ड के समीपवर्ती पश्चिम बंगाल, उड़िसा के कुड़मी कबिला बिहार एवं अन्य क्षेत्रों के कुरमी/कुर्मी से बिल्कुल भिन्न समाज हैं। जनजाति में टोटेम और टाबु विशेष सामाजिक रीतियाँ हैं, जो कुड़मी जनजाति में भी मिलते हैं। जनजाति कुड़मी समाज में 81 टोटेम (गोत्र) पाए जाते हैं। सामाजिक और धार्मिक निषेध कुड़मी समाज में भी उसी प्रकार पाये जाते हैं जो मुण्डा, सांथाल, 'हो', खड़िया और उरांव अनुसूचित जनजातियों में पाये जाते हैं। इसी मौलिक सच्चाई के आधार पर कुड़मी जनजाति भी अनुसूचित जनजाति की सूची में पुनः लायी जा सकती है।

इसके अलावा अंग्रेज सरकार की नीति तथा मानव विज्ञान पंडितों के विचार के आधार पर भी कुड़मी जनजाति को अनुसूचित जनजाति की सूची में रखने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। पर इस वैधानिक कदम उठाते समय सरकार बिल्कुल साफ कर दे कि कुड़मी और कुरमी दो भिन्न जातीय और भाषा समुदाय के लोग हैं। श्री लक्ष्मीकान्त मुतरूआर जी के विचार अनुसार ट्राइबल – टोटेमिक कुड़मी जनजाति हैं, नन – ट्राइबल, नन – टोटेमिक कुरमी जनजाति नहीं हैं।

20.12.2001

डा0 निर्मल मिंज
संस्थापक प्राचार्य
गोसनार कॉलेज राँची।

दो शब्द

नए राज्य के साथ पारम्परिक कठिनाइयों के बावजुद एक बात तो साफ दिखाई देती है, वह है यहाँ की सृजनशीलता के प्रस्फुरन में सहज गतिशीलता। लगता है युगों से बाधित अंतःशलिला अचानक उपर आ गई है। श्री लक्ष्मीकांत जी की नवीनतम रचना " जनजाति परिचिति " को पढ़कर मुझे इसी प्रकार का आनन्द हुआ। झाड़खण्डी जनजीवन पर अब तक की अधिकांश सामग्री किनारे खड़े विद्वानों – अध्येताओं द्वारा ही लिखी गई है। अब यहाँ का आदमी अपने बारे में अपने ढंग से सोंच रहा है, इसलिए नजरिया के साथ ही तथ्य समायोजन में भी परिवर्तन दिखाई देगा।

प्रस्तुत अध्ययन में सम्मिलित छह समुदायों में तकनीकी तौर पर (मुण्डा, सांथाल, उरांव, खड़िया और हो) को ही अनुसूचित जनजाति (Scheduled Tribe) के रूप में चिन्हित किया गया है और कुड़मी को उस अनुसूची से बाहर ही रखा गया है। मुझे पुरा विश्वास है कि यहाँ प्रस्तुत सामग्री का उपयोग सरकार के अधीन विचारार्थ अपील पर निणर्य लेने में किया जा सकेगा। झाड़खण्डी समाज को समझने की दिशा में इस महत्वपूर्ण कृति के प्रकाशन के लिए लेखक और प्रकाशन दोनों बधाई के पात्र हैं।

इस तरह की और भी रचनाओं की प्रत्याशा में, शुभाकांक्षाओं सहित,–

29 / 12 / 2001

रामदयाल मुण्डा
पूर्व कुलपति,
राँची विश्वविद्यालय, राँची।

सरधा–आभार

सांस्कृतिक अतिक्रमण, सत्तालोलुप चतुराई व पड़ोसी राज्यों में समनाम जाति के षड़यंत्रों से अपने वास्तविक वजूद से विस्मृत जनजाति कुड़मि को उसके शाश्वत्, विशिष्ट, प्रत्यक्ष, स्पष्ट, पारिभाषिक, जनजातीय तत्वों से रूबरू करवाने का दूरूह श्रम व कष्ट साध्य कार्य करना लेखक के काल में आसान नहीं था। अपने सीमित आय, सीमित साधनों से पारिवारिक, सामाजिक, पेशागत दायित्वों में सामंजस्य रखते हुए अपने पल पल को जातीय पहचान तत्वों का तेजी से क्षरण होते युग में सतर्कता से शोध कर खोज निकालना, स्थापित करना व सामाजिक अस्वीकृति के खतरे से बाहर रहना कितना स्पर्धात्मक था, की कल्पना कर रूह कांप जाती है। लेखक के दृढ़ निश्चय, सरल हृदय, समर्पण, एकनिष्ठा, नीर–क्षीर विवेक व धैर्य के प्रति नतमस्तक हूँ। जनजातीय तत्वों को पहचानना और तुलना करना सचमुच में दुधारी तलवार में चलने के समान है और लेखक इसमें सफल हुए हैं। मेरे जेठा तुल्य माइनगर लक्ष्मीकान्त मुतरूआर जी की यह पुस्तक कुड़मि कुड़मालि नेगाचार पुनर्जागरण अभियान की एक मौलिक अमूल्य सारगर्भित पुस्तक है जिसे एक एक कुड़मि को घर घर रखना व अनिवार्यतः पढ़ना चाहिए ताकि वे अपने जनजातीय भाखि, नेग, चारि, समाज व्यवस्था टोटेम (गुसटि चिन्ह) व टाबु (निषेध) तथा मौलिक नृतत्व सच्चाई को जान सकें।

आज से बीस वर्ष पूर्व यह पुस्तक जब पहली बार छपी तो लोगों ने हाथों–हाथ लिया क्योंकि अपने तरह की यह पहली व एकमात्र पुस्तक थी। कुड़मालि पढ़ने वाले छात्रों को जनजाति कुड़मि की विशिष्टताओं से परिचित होना अनिवार्य था। अतः इसे विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम में भी शामिल किया गया। आज बीस साल बाद भी इस पुस्तक जैसी और कोई पुस्तक आ नहीं पाई है। आज समाज को इस पुस्तक में छपी मौलिक जानकारियों की अनिवार्य आवश्यकता व छात्रों की जरूरत को देखते हुए "आदि कुड़मि युवा शक्ति" ने इसके द्वितीय संस्करण हेतु साहस किया है, इसके लिए समाज अनुग्रहित रहेगा।

दीपक पुनअरिआर
शिक्षक
बसरिया, कसमार
बोकारो, झारखण्ड

प्राक्कथन

ऐतिहासिक, भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक, भाषायिक, सांस्कृतिक एवं नृतात्विक भित्तिक आदिम निवासी आदिवासी अध्यूषित बिहार के छोटानागपुर – सांथाल परगनाएँ एव समीपवर्ती पश्चिम बंगाल तथा उड़िसा में स्थित झाड़खण्ड के क्षेत्रों को संगठित कर पृथक झाड़खण्ड राज्य का सुदीर्घ आन्दोलन के फलस्वरूप भारत का 28 वाँ राज्य सिर्फ छोटानागपुर – सांथाल परगने के जिलों को ही मिलाकर जनजाति बहुल झाड़खण्ड राज्य 15 नवम्बर 2000 ई0 को अस्तित्व में आया।

भारतवर्ष के सुविधावादी अभिजात तंत्रितों की साम्राज्यवादी चक्रांत एवं चतुराई से सुप्राचीन आदिम जनजाति की आदिम निवास भुमि को खण्ड–विखण्ड कर वर्तमान झाड़खण्ड राज्य के समीपवर्ती सम ऐतिहासिक, सम भौगोलिक, सम भाषा–सांस्कृतिक क्षेत्रों को विषम भाषा–संस्कृति विशिष्ट राज्यों में समाहित कर दिया गया है। जिसके कारण आदिम निवासी जनजातियाँ अपनी सामाजिक मर्यादा, भाषा–संस्कृति एवं अस्मिता सह मौलिक अधिकार समुह खोते चले आ रहे हैं। ज्ञात रहे – तत्कालीन भारत सरकार की 550 नं0 नोटिफिकेशन 2 मई 1913 ई0 की एवं बिहार – उड़िसा राज्य सरकार की 3563.J. नोटिफिकेशन 8 दिसम्बर 1931 ई0 को अनुसूचित जनजाति सूची में कुड़मी कबिला, घासी, पान आदि जनजातियाँ अनुसूचित रही हैं। राजनैतिक चतुराई तथा ब्राह्मण्यवादी संस्कृति की आग्रासी मनोवृति एवं नीतियों के प्रकोप में तथा आदिम जनगोष्ठियों की आदिम संस्कृति का अवमूल्यायण कर टोटोमिक – ट्राइबल कुडमी कबिला सह घासी, पान आदि जनजातियाँ वर्तमान अनुसूचित जनजाति सूची से हटाने के फलस्वरूप झाड़खण्ड राज्य के संख्या गरिष्ठ जनजातियों की जनसंख्या लघु हो गई है एवं जनजातीय पहचान मिटती जा रही है।

जनजाति बहुल झाड़खण्ड राज्य की जनजातीय जनसंख्या को संतुलित हेतु एवं भारत सरकार राज्य सभा की मिनिस्ट्री ऑफ सोशियल जस्टीस एण्ड एम्पाउआरमेंट विभाग, शास्त्री भवन, नई दिल्ली की पत्र सख्या – 12016 – 23 / 2000, दिनांक 15–02–2001 के तहत झाड़खण्ड की अनुसूचित जाति /

अनुसूचित जनजाति सूची को पुनरीक्षित कर झाड़खण्ड की कुड़मी जाति को ट्राइबल केटेगरी में पुनः शामिल करने हेतु समाज कल्याण विभाग झाड़खण्ड सरकार की मतामत एवं अनुशंसा प्रस्तुति में यह ''जनजाति परिचिति'' (तुलनामूलक अध्ययन) पुस्तक निःसन्देह सहायक होगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

अंग्रेजी – हिन्दी – कैथी भाषा में ''जाति कुड़मी'' के जगह ''जाति कुरमी / कुर्मी'' लिखने का प्रचलन चल रहा है। इसीलिए छोटानागपुर – सांथाल परगने के जिले के ट्राइबल – टोटोमिक जनजाति कुड़मी जन समुदाय के खतियान आदि दस्तावेजों में ''जाति कुड़मी'' के जगह ''जाति कुरमी / कुर्मी'' लिखा गया है। यहाँ तक कि 1932 ई0 के पहले ही खतियान आदि दस्तावेजों में जहाँ ''जाति कुड़मी'' लिखा हुआ था, वहीं पुनरीक्षित सर्वेक्षण के खतियानादि में भी कहीं–कहीं ''जाति कुरमी'' तो कहीं–कहीं ''कुर्मी'' लिखा गया है। इसका एकमात्र कारण '' भाषायिक उच्चारण ध्वनितंत्र '' है।

पूर्व में भारत सरकार तथा बिहार सरकार की जाति सूची के अनुरूप ही वर्तमान झाड़खण्ड की सरकारी जाति सूची में भी छोटानागपुर के ट्राइबल – टोटेमिक – कुड़मी जनसमुदाय को ''जाति कुरमी (महतो)'' पिछड़ा वर्ग ऐनेक्सर – 1 में एवं सांथाल परगने के ट्राइबल टोटेमिक कुड़मी जनसमुदाय को ''जाति कुरमी'' ऐनेक्सर – 2 में दर्ज किया गया है। लेकिन झाड़खण्ड के ट्राइबल – टोटेमिक कुड़मी और ट्राइबल – टोटेमिक 'कुरमी' एक ही आदिम निवासी ''जनजाति कुड़मी कबिला'' के आदिम जनसमुदाय हैं, भिन्न नहीं। लेकिन अपेक्षाकृत बाद में आकर झाड़खण्ड क्षेत्र में बसवासकारी ननट्राइबल ननटोटेमिक कुरमी जनजाति नहीं हैं।

झाड़खण्ड सरकार अनुसूचित जाति / अनुसूचित जनजाति सूची को पुनरीक्षित कर जनजाति कुड़मी कबिला के आदिम जनसमुदाय को अनुसूचित जनजाति में पुनः शामिल कर इस आशय में अधिसूचना जारी करेगी, ऐसा विश्वास है।

इस पुस्तक के प्रारंभ में आदिवासी या जनजाति की परिभाषा, जनजाति की विशेषताएँ उल्लिखित आदिम जनजातियों की आदिम निवास भुमि, एथनिक्स यानि रेसेस (झाड़खुंट) जनजातीय कबिलावाची मातृभाषाएँ, जनजाति संस्कृति उल्लिखित हैं। क्रमशः मुण्डा कबिला – सांथाल कबिला – जनजाति कुड़मी कबिला – उरांव (कुडुख) कबिला – खड़िया – 'हो' कबिलाओं की Tribes (गोष्ठियाँ), Totems (विश्वास), Taboo (धार्मिक विधि निषेध) की पृथक पृथक चर्चा की गई है। जनजाति जनजीवन का अध्ययन, झाड़खण्ड के जनजातियों की जन संख्याओं की एक झलक उपरांत सृष्टि सम्बंधी जनजातियों की लोक कथाओं की प्रविष्टी भी की गई है। अंतिम अध्याय में – भारत सरकार एवं राज्य सरकारों के अधिकारीयों के निर्देश, विभिन्न सरकारी नोटिफिकेशन, सरकारी सर्कुलर एवं जनजाति कुड़मी तथा अन्यान्य अनुसूचित जनजातियों से सम्बंधित पत्रों को उल्लिखित किया गया है।

"जनजाति परिचिति" (तुलनामूलक अध्ययन) पुस्तक मेरी मौलिक रचना नहीं है, विभिन्न लेखकों के लिखित पुस्तकों के अध्ययन से तथा सरकारी नोटिफिकेशन, सर्कुलर, निर्देश एवं सरकारी पत्रों से संग्रहित तथ्य समुह का संकलन है। उन लेखको के प्रति मैं आभारी हूँ। श्री अर्जुन मुण्डा, कल्याण मंत्री, झाड़खण्ड सरकार, श्री सूर्य सिंह बेसरा, सदस्य, जनजाति परामर्श दातृ परिषद, झाड़खण्ड सरकार, डा0 निर्मल मिंज, स्थापना प्राचार्य, गोसनर कॉलेज राँची, डा0 रामदयाल मुण्डा,पूर्व कुलपति, राँची विश्वविद्यालय, राँची ने क्रमशः " संदेश – सराहनीय – एक मन्तव्य – दो शब्द " लिखकर पुस्तक की श्री वृद्धि की है। अतः उन महानुभवों के प्रति सश्रद्ध आभार व्यक्त करते हुए कृतज्ञ हूँ।

मैं जनजाति कुड़मी कबिला के मुतरूआर ट्राइब का एक जनजाति सदस्य हूँ। बचपन से ही मेरी पितामही ने मुतरूआर ट्राइब की टोटेम माकड़ा एवं उन्हें नहीं मारना, धार्मिक विधि निषेध का ज्ञान दिया था। मैं आमरण उनका ऋणी हूँ। Resely महोदय के "कास्ट्स एण्ड ट्राइब्स ऑफ बेंगल" पुस्तक पढ़ने से मेरी अपनी ट्राइब एवं टोटेम की सम्पुष्टि हुई। मैं उनके प्रति कृतज्ञ हूँ।

इस पुस्तक को पुस्तकाकार में प्रस्तुत करने का प्रोत्साहन मेरा अन्तरंग साथी श्री धरमचंद उरांव, प्रधानाध्यापक, गांव–चाकुलिया, चास, बोकारो से मिला है। उन्होंने उरांव कबिला की ट्राइब्स – टोटेम – टाबुओं को लिखाकर इस पुस्तक को प्रस्तुत करने की प्रेरणा दी है, मैं उनके प्रति आभारी सह कृतज्ञ हूँ। डा0 शशि भूषण काडुआर, डा0 मनोरमा काडुआर तथ्य संग्रह कर पुस्तक को तैयार करने में सहयोग किये हैं, श्री केशव चन्द्र टिडुआर साधारण सम्पादक आ0 कु0 स0 केन्द्रीय कमिटि, श्री दर्पनारायण डुमरिआर, भण्डरो, चास, बोकारो एवं श्री नन्दलाल कइड़अआर पोखन्ना, चास, बोकारो प्रेस में आकर खोज लेते हुए प्रोत्साहित करते रहते थे, उन लोगों के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ। श्री खिरोधर हंस्तुआर, अमडीहा (बंधुडीह), श्री अवधेश कानबेध केटिआर, सोनाबाद, चास, बोकारो, श्री सुधिर चन्द्र बंसरिआर, लंका, चन्दनकियारी, श्री हरिबोल हिंदइआर, खेड़ाबेड़ा, चन्दनकियारी, बोकारो, श्री कान्त कइड़अआर, काँशीटाँड़, पोखन्ना के आर्थिक सहयोग से पुस्तक का प्रकाशन में शीघ्रता आयी है, मैं उन सबों के प्रति ऋणी एवं कृतज्ञ हूँ। श्री बुद्धेश्वर काडुआर पुस्तक छपाई के समय संवाद वाहक के रूप में कार्यरत थे उनके प्रति भी कृतज्ञ हूँ।

महतो प्रिंटिग प्रेस, पिण्ड्राजोरा ट्रेनिंग सेंटर मोड़, पिण्ड्राजोरा, बोकारो के मैनेजर श्री तारापद केटिआर, आदरकुड़ी, चास, बोकारो एवं मुद्रक मो0 आबेदीन अन्सारी उलगाड़ा, चास, बोकारो भी दुखः – कष्ट सहकर पुस्तक को मुद्रित किये हैं, के प्रति आभारी सह कृतज्ञ हूँ। बुक बाइण्डर श्री दीपक सरकार, कुरा, चास, बोकारो के प्रति भी मैं चिर कृतज्ञ हूँ।

अंत में पाठक वर्गों से परिमार्जण या परिवर्धण के सुझााव आमंत्रित है। अगले प्रकाशन में प्रविष्टि की आशा आकांक्षाओं के साथ –

(लेखक)

आदिवासी या जनजाति कौन ?

सुप्राचीन आदिम जनसमुदाय पिढ़ी दर पिढ़ी अपना निवास जनपद में अति प्राचीन सामाजिक परम्परागत स्वशासन व्यवस्था द्वारा स्वशासित होते आ रहे हों, जिनका गोष्टी संगठन पशु–पक्षी, कीड़े–मकोड़े, पेड़–पौधे, फुल–फल, साग–पात, माछ–मछली आदि के नामों से परिचित हों, जिनका गोष्ठी समुह का मूल संगठन कबिला वाचक हो, टोटेमिक हो, जिनका कबिला या जाति वाचक अपनी बोली या भाषा हो, जिनकी अपनी आदिम संसति हो, मूर्तिपूजन नहीं प्रति पूजन हो, हिन्दू विधि द्वारा शासित न होकर प्रथायी विधि द्वारा शासित एवं उत्तराधिकारी प्राप्त हो, उन आदिम जनसमुदायों को आदिवासी कहते हैं। वे ही जनजाति के नामों से जाने जाते हैं। सरकारी अनुसूची में सुचीबद्ध रहने से अनुसूचित जनजाति की व्याख्या से आख्यायित होते हैं।

अर्थात् अति प्राचीन जनसमुदाय जिनका निर्दिष्ट निवास भूमि हो, वह जनसमुदाय गोष्ठी या ट्राइबों का समुह जिनके गोष्ठियों का अलग–अलग अस्तित्व हो, उनका सामान्य धर्म हो, गोष्ठियाँ एवं उनका मूल संगठन कबिला सभी टोटेमिक हो, विधि निषेध मानते हो, उन कबिलावाचक जन समुदाय की अपनी कबिलावाची बोली या भाषा हो, सामान्य धर्म हो, सामान्य संसति हो, उन जनसमुदाय को आदिवासी, आदिम जाति, जनजाति, अनुसूचित जनजाति, पर्वतीय जाति, वन्यजाति आदि नामों से जाने जाते हैं।

इस संबंध में विभिन्न विद्वानों का मत निम्न प्रकार हैं –

बोआस के अनुसार – By Tribe we usually mean an economically independent group of people speaking the same language and uniting to depend themselves against out siders.

अर्थात् –

जनजाति से तात्पर्य – आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर व्यक्तियों के ऐसे समुह से हैं जो सामान्य भाषा बोलते हों तथा बाहरी आक्रमणों से अपनी रक्षा करने के लिए संगठित हों।

जेकबस तथा स्टर्न के मतानुसार –

A cluster of village Communities which share a common territory, language and culture and are economically interwoven, is often also designated a Tribe.

अर्थात् एक ऐसा ग्रामीण समुदाय का समुह जिसकी समान भूमि हो, समान संसति हो, समान भाषा हो और जिस समुदाय से व्यक्तियों का जीवन आर्थिक दृष्टि से एक दूसरे के साथ ओत–प्रोत हो, जनजाति कहलाता है।

डॉ0 मजुमदार के अनुसार –

A Tribe is a collection of families, group of families bearing a common name, members of which occupy the same territory, speak the same language and observe certain taboos regarding marriage, profession or occupation and have devoted a well assessed system of reciprocity and mutuality of obligation.

अर्थात् – जनजाति परिवारों या परिवार समुहों के सम्प्रदाय का नाम है। इन परिवारों या परिवार समुहों का एक सामान्य नाम होता है, वे एक ही भू–भाग में निवास करते हैं एक ही भाषा बोलते तथा विवाह, उद्योग धंधो में एक ही प्रकार की बातों को निषेद्य मानते हैं। एक दूसरे के साथ व्यवहार के सम्बंध में भी इन्होनें अपने पुराने अनुभव के आधार पर अपना कुछ निश्चित नियम बना लिये हैं।

इम्पीरियल गजेटियर के अनुसार –

A Tribe is a Collection of families which have a Common name and a Common dialect and which occupy or profess to occupy a common Territory, and which have been if they are not endogamous.

अर्थात् – जनजाति एक ऐसे सम्प्रदाय का नाम है जिसका एक समान नाम हो, जिसकी एक समान बोली हो, जो एक समान भू–भाग में रहता हो या उस भू–भाग को अपना मानते हों ओर जो अपनी जनजाति के भीतर ही विवाह करते हैं।

संक्षेप में – जनजाति उन गोष्ठी समुहों के मूल संगठन में संगठित जन समुदाय को कहते हैं जो एक निर्दिष्ट भू–भाग में बसवास करते हों, मूल संगठन का एक बाचिक नाम हो, उस बाचिक नाम वाचक अपनी एक भाषा हो, अपनी एक विशिष्ट संसति हो, निर्दिष्ट गोष्ठी या ट्राइब टोटेमिक हो, ट्राइबों का समूह संगठन या मूल संगठन या कनफेडारेसी भी टोटेमिक हो, अपना–अपना टोटोमिक जनसमुदाय अपना बाचिक टाबु यानि धार्मिक विधि निषेध मानते हों, वे आदिवासी या जनजाति कहलाते हैं।

जनजाति की विशेषताएँ

जनजाति समाज की कुछ प्रमुख विशेषताएँ या लक्षण होते हैं, जो निम्न प्रकार हैं :–

1. कई गोष्ठियों का समुह – जनजाति का निर्माण कई गोष्ठियों के संकलन से होता है। एक गोष्ठी एक परिवार ही होता है। जनसंख्या की वृद्धि के कारण परिवारों की संख्या में वृद्धि होती है। परिवार ही जनजाति समाज की मौलिक इकाई है। जनजाति परिवार या गोष्ठी का ही एक विस्तृत रूप है जैसे – मुण्डा जानजाति में सोय, पूर्त्ति, बोदरा, तिड़, भेंगरा इत्यादि।

संथाल जनजाति में, हेम्ब्रम, हांसदा, सोरेन, माराण्डी, बेसरा इत्यादि। कुड़मी जनजाति में सांखुआर, टिडुआर, मुतरूआर, काडुआर आदि। कुडुख (उरांव) जनजाति में – कुजुर, मिंज, खेस, किसपोट्टा, सांखुआर, तिग्गा इत्यादि। खड़िया जनजाति में – बाः, किड़ो, बिलुंग इत्यादि। हो जनजाति में – तुबिद, तियु, लुगुन इत्यादि। इन गोष्ठियों के अग्रेजी में Tribe कहा जाता है, जिसका अर्थ है गण या दल।

2. जनजाति टोटेमिक होते हैं – अंग्रेजी शब्द Totem का अर्थ विश्वास – ट्राइबल संगठित जनजाति किसी भौतिक पदार्थ, पशु – पक्षी, पेड़–पौधे, फुल–फल, कीड़े–मकौड़े, जलजीव आदि से अपना एक रहस्यमय संबंध होने का दावा करते हैं वे ही ट्राइब या गोष्ठी नाम से जाने पहचाने जाते हैं। उन पर टोटेम या विश्वास मानते हैं।

3. जनजाति टाबु जानते हैं – टाबु Taboo का अर्थ है धार्मिक विधि निषेद्य या व्यवहार में नहीं लाते, वध नहीं करते अथवा खाते नहीं हैं।

4.विशिष्ट नाम – प्रत्येक जनजाति का कोई न कोई एक विशिष्ट नाम अवश्य होता है जिसके द्वारा वह जानी जाती है। जैसे मुण्डा, संथाल, कुड़मी, उरांव इत्यादि।

5. एक निश्चित भू–भाग – हर जनजाति की एक निर्दिष्ट परम्परागत निवास भूमि होती है। किन्तु इस संबंध में विद्वानों में मत भिन्नता है। डॉ0 रिचर्ड का मत है कि जनजाति के लिये एक निश्चित निवास भूमि होना आवश्यक नहीं है क्योंकि कई जनजातियाँ घुमक्कड़ जीवन व्यतीत करती हैं। किन्तु डॉ0 मजुमदार का मत है कि घुमक्कड़ जनजातियाँ एक निश्चित भौगलिक क्षेत्र में ही घुमती हैं, सभी स्थानों पर नहीं। अतः प्रत्येक जनजाति का निवास एक निश्चित भू–क्षेत्र में होता है।

6. कबिला की भाषा – प्रत्येक जनजाति की अपनी कबिलावाची भाषा होती है जिसका प्रयोग उस जनजाति के सभी लोग करते हैं। जनजाति भाषा का हस्तान्तरण प्रमुखतः मौखिक रूप से ही होता है। वर्तमान में बाहरी लोगों के सम्पर्क के कारण मूल जनजातीय भाषाओं के अलावा अन्य भाषाएँ भी बोलने लगे हैं।

7. सामुदायिक भावना – एक निश्चित भू–भाग में निवास करने के कारण एक जनजाति के सदस्यों में सामुदायिक भावना पायी जाती है। इसी भावना के कारण वे परस्पर सहयोग या सहायता प्रदान करते हैं तथा संकट केसमय एकता का प्रदर्शन करते हैं।
8. जनजाति अन्तर्विवाह – जनजातियाँ अपनी ही जनजाति में विवाह करते हैं जनजातियाँ कई गोष्ठियों का समुह होती हैं। वे अपनी गोष्ठी को छोड़कर जनजाति या कबिले की बाकी गोष्ठियों में विवाह करते हैं।
9. बिटलाहा व्यवस्था – जनजातियों की अपनी सामाजिक नियम श्रंखला होती है। स्वगोष्ठीय विवाह तथा बहिर्जनजातीय विवाह जनजातीय नियमानुसार निषिद्य होता है। कुछ के विधि निषेध मानना पड़ता है अन्यथा, ऐसा होने पर उस व्यक्ति अथवा जिनकी सलाह से विवाह होता है उन्हें बिटलाहा घोषित कर सामाजिक दण्ड दिया जाता है।
10. जनजातीय संस्कृति – प्रत्येक जनजाति की अपनी एक विशिष्ट संस्कृति होती है। एक जनजाति की रीति–रिवाज, प्रथाएँ, धार्मिक एवं जादुई विश्वास एवं क्रियाऐं, सामाजिक संगठन, नैतिक विश्वास अन्य जनजातियों से भिन्न होती हैं। किसी–किसी क्षेत्र में अन्य जनजाति के समरूप भी होता है।
11. एक राजनीतिक संगठन – प्रत्येक जनजाति का एक राजनीतिक संगठन होता है। जिसे जनजातीय समाज का आदिवासी या जनजातीय स्वशासन कहा जाता है।
12. अर्थ व्यवस्था – सामान्यतः सभी जनजातियों की अर्थ व्यवस्था आजीविका स्तर की होती है जिसमें आत्मनिर्भरता अधिक पायी जाती है। सामान्यतः वस्तु विनियम प्रणाली व्यापारिक क्रियाओं का आधार होता है।
13. नातेदारी का महत्व – जनजाति में नातेदारी को अधिक महत्व दिया जाता है। जनजातीय लोग अपने राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक सम्बंध अपनी नातेदारी तक ही सीमित रखते हैं। कभी – कभार तो नातेदारी का विस्तार सम्पूर्ण जनजाति तक होता है।

14. जनजातीय धर्म – जनजाति का अपना एक विशिष्ट धर्म होता है। इसके धर्म में प्रति पूजा आत्मवाद और जीववाद की प्रधानता पायी जाती है। जनजाति के लोग कई जादुई क्रियायें भी करते हैं।

15. मौलिक उत्पत्ति की कथा – कई जनजातियाँ अपनी उत्पत्ति एक सामान्य पूर्वज से मानती हैं। वे पूर्वज वास्तविक और काल्पनिक दोनों ही हो सकते हैं। संसार की उत्पत्ति, वनस्पति तथा खाद्यानों की उत्पत्ति की लोग कथायें होती हैं। जनजातीय समाज को आदिम समाज के नाम से भी जाना जाता है।

ट्राइब या गोष्ठी

मनुष्य के विकास क्रम में, प्रारम्भिक काल से आजतक जनजातियों को कई स्तर के अतिक्रमण का सामना करना पड़ा है। इस भारत भूमि में अति आदिम निवासी जंगली जीवन व्यतीत करते थे। इस स्तर को प्रारम्भिक वन्य स्तर कहा गया है। विद्वानों के मतानुसार प्रथम वन्य स्तर, द्वितीय वन्य स्तर एवं तृतीय वन्य स्तर यानि इस स्तर को तीन भागों में बांटा गया है। उसके बाद क्रमशः बर्बर स्तर, पशुपालन स्तर एवं षिजीवी स्तर का अतिक्रमण कर मनुष्य ने आधुनिक विकासवादी स्तर में प्रवेश किया है।

प्रथम वन्य स्तर में मनुष्यों के पास कोई परिधान नहीं था। नंगे रहते थे, आग जलाना नहीं जानते थे। फल, मूल, साग–पात, जन्तु जानवर तथा चिड़ियों के कच्चे मांस को खाकर जीविका निर्वाह करते थे। तरू कोटर तथा गुफाओं में निवास करते थे। स्वामी–स्त्री पिता–पुत्र, मां–बेटा, भाई–बहन, चाचा–चाची आदि किसी तरह का नातेदारी सम्बन्ध नहीं था। संतान उत्पादन में पशु जैसा नर–मादा का संबंध था। बाहरी आक्रमण, हिंसक जन्तु जानवरों से रक्षा के लिए वे झुण्ड के झुण्ड रहते थे एवं उनका संबंध अपने–अपने झुण्ड में ही सीमित रहा होगा।

परिवर्तन के कालक्रम में मनुष्यों में चेतना की जागृति हुई होगी। लाज ढंकने के लिए पेड़ के बाकल (छाल), पशुओं के चमड़े पहनने लगे।

यौन सम्पर्क अपने झुण्ड के बाद अन्य झुण्डों के स्त्री और पुरूषों के साथ स्थापित करने की भावना जगी होगी। इस तरह से परस्पर झुण्डों जिनकी बोली या भाषा एक सी रही होगी, आपस में सदभावना का व्यवहार रहा होगा, बाहरी आक्रमण प्रातिक विपदाओं से रक्षा के लिए एक ही निवास स्थल को चयन कर परस्पर मैत्री भाव से बसवास की भावना जगी होगी। वे भिन्न–भिन्न झुण्डों में रहा करते थे अलग–अलग झुण्ड की अलग–अलग परिचिति की भावना जगी होगी। उन्होंने अपने–अपने झुण्ड की पहचान वन्य पशु–पक्षी , फुल–फल, घास–पात, कीड़े–मकोड़े, पेड़–पौधे, जलजीव भौतिक पदार्थ आदि के नामों से रखी, वह पहचान आज तक आदिम जनजातियों की गोष्ठी परिचिति के रूप में बरकरार हैं। चूंकि एक निश्चित भूमि के निवासी रहने के कारण आत्मीयता की भावना, मन का भाव प्रकट करने हेतु एक ही संकेत या बोली, एक सा आचार–आचरण के धारक वाहक रहने के कारण झुण्डों के समुह एक संगठन में संगठित हुए। अलग–अलग झुण्ड की पहचान अलग–अलग नामों से हुई। इन झुण्डों के जनसमुदाय अलग–अलग भौतिक पदार्थ एवं अलग–अलग पशु–पक्षी, कीड़े–मकौड़े के नामों से अपनी आदिम परिचिति से आजतक परिचित है। वे उन बाचिक भौतिक पदार्थों तथा पशु पक्षियों का विश्वास मानते हैं। उनको मारते नहीं व्यवहार में लाते नहीं अथवा खाते नहीं यानि बारबीच का आलन पालन मानते हैं। वाचित झुण्ड या दल को को अंग्रेजी में Tribe (ट्राइब) कहते हैं। ट्राइबों के समुह संगठन को कबिला कहते हैं। विद्वानों के अनुसार इस तरह के संगठन प्रागेतिहासिक अतिप्राचीन द्वितीय वन्य स्तर में ही विकसित हुए होंगे। वर्तमान में उक्त ट्राइबल जनगोष्ठी जैसे हिंदइआर, सांखुआर, गेरूआर, मुतरूआर, डुमरिआर, काडुआर, टिडुआर आदि आदिम गोष्ठियों के समुह संगठन आदिम जनजाति कुड़मी कबिला है। इस तरह से मुण्डा गोष्ठियों के समुह मुण्डा कबिला, संथाल गोष्ठियों के समुह संथाल कबिला, कुडुख या उरांव गोष्ठियों के कुडुख या उरांव कबिला, खड़िया गोष्ठियों के समुह खड़िया कबिला एवं हो गोष्ठियों के समुह हो कबिला आदि नामों से जाना जाता है।

टोटेम विश्वास

कबिलावाची आदिम ट्राइबल जनसमाज या आदिम जनजाति प्रारम्भिक स्तरों में विभिन्न गण या दलों में विभक्त थे। मानसिक चिन्तन भावना की जागृति के फलस्वरूप अपरिहार्य कारणों से उन गण या दलों की विशेष पहचान की आवश्यकता हुई। आदिम जनगन प्राकृतिक वातावरण में गुजर बसर करने के कारण प्रकृति से उपलब्ध वनस्पति, जीव–जन्तुओं, पक्षियों, जलजीव, कीट–पतंग तथा भौतिक पदार्थों के नामों से ही पहचाने जाने लगे। जैसे – जनजाति मुण्डा कबिला में – सोय ट्राइब का टोटेम सोलमाछ, पुर्ति का चुहा, होरो का कछुआ, बरला का बड़ का वृक्ष, कण्डुलना का कुसुम का फल इत्यादि। जनजाति संथाल कबिला के ट्राइब मुर्मु का टोटेम नीलगाय, हेमब्रम का पानपत्ता, बेसरा का बाज पक्षी, चौडें का छिपकली आदि। जनजाति कुड़मी कबिला के–ट्राइब केसरिआर का टोटेम केसर घास, चिलुआर का चिल पक्षी, गुलिआर का घंघी, मुतरूआर का माकड़ा, सांखुआर का शंख या सांखा इत्यादि। कुडुख (उरांव) कबिला के ट्राइब एक्का का टोटम कछुआ तिर्की का टेरी पक्षी, कुजुर का कुजरी गाछ, तिग्गा का बंदर, किसपोट्टा का घुसुर या बरहा आदि। जनजाति खड़िया कबिला के ट्राइब बाः का टोटेम धान, किड़ो का बाघ, कुल्लु का कछुआ, सोरेंगे का चट्टान, टोप्पो का लकड़ी खोदने वाली पक्षी इत्यादि है। इसी तरह जनजाति हो कबिला के ट्राइब बागे का टोटेम बाघ, कुलुण्डिया का कलछुल, तुबिद का चुहें का बिल, तियु का सियार, लुगुन का टोटेम तसर कौआ आदि हैं। इस तरह से आदिम निवासी आदिवासी कबीले के लोग विभिन्न किली तथा चिन्हों से पहचाने जाने लगे। आदिकाल से आदिम निवासी आदिम जाति या जनजाति आदिवासियों की आदिम पहचान का चिन्ह आजतक मूल रूप में ही बरकरार है।

मानव समाज क्रमिक विकास की प्रक्रिया का परिणाम है। इस प्रक्रिया का प्रभाव आदिवासी समाज पर भी पड़ा है। आदिवासी या जनजातीय सामाजिक संगठन में वंश की मूल की उत्पत्ति का आधार मात्र सामाजिक तथा

सांस्कृतिक पहलु ही नहीं है, अपितु भौतिक पहलुओं का भी उत्पत्ति में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। उत्पत्ति के संबंध में जनजातीय समाजों में जो आधार प्रस्तुत किये जाते हैं, वे श्रद्धा, भक्ति, आदर के रूप में देखे जाते हैं। इन्हें ही ट्राइब या गोष्ठी माना जाता है। टोटेम को हिन्दी में गोष्ठी–चिन्ह या गण–चिन्ह कहते हैं। टोटेम किसी पेड़–पौधे, वनस्पति, वस्तु आदि के नामों से गोष्ठी युक्त मनुष्यों की पहचान है। टोटेम गौष्ठी का ही चिन्ह है। इसका आधार एक जनजातीय कबिला के अन्तर्गत अपनी टोटेम को छोड़कर अन्य टोटेमों में विवाह करते हैं क्योंकि एक गोष्ठी के लोग एक ही रक्त सम्बंध को मानते हैं। टोटेम एक पवित्र धारणा है। इसके प्रति सदस्यों की विशेष श्रद्धा भक्ति और आदर भाव होता है, इसलिए इसके सभी सदस्य इसकी पूजा करते हैं।

टोटेम शब्द सर्वप्रथम एक अंग्रेज जे. लोंग ने 1791 ई0 में उत्तरी अमेरिका के रेड इण्डियनों से ग्रहण किया।

जे0 एफ0 मैक्लेनन पहले लेखक थे जिन्होंने आदिम सामाजिक संस्था के रूप में टोटेमवाद के महत्व को समझा। आस्ट्रेलिया के अतिरिक्त यहाँ टोटेमवाद सर्वाधिक व्याप्त है, अफ्रीका के कुछ भागों, उत्तरी अमेरिका के कुछ रेड इण्डियन कबिलों और दक्षिणी अमेरिका के दो कबिलों में यह संस्था पाई जाती है। भारत में भी बहुसंख्यक कबिले या तो टोटेम आधार पर संगठित हैं या विशेष पशुओं औंर पौधों को पवित्र मानते हैं या उन विशेष पशुओं और पौधों को खाना या नष्ट करना धार्मिक विधि निषेध मानते हैं। टोटेम समुह सामाजिक जीवन की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पुरा करने के लिए एक से अधिक टोटेमी समुहों में बंटा है। एक टोटेमी कुल के सदस्यों की संख्या में वृद्धि के कारण वे उप–टोटेमों में विभत्क हो जाते हैं, उसको उस मूल टोटेम की Fratry या शाखा कहते हैं। झाड़खण्ड क्षेत्र के कबिले मुण्डा–संथाल कुड़मी–कुडुख (उरांव) खड़िया हो आदि में जनसंख्या वृद्धि के कारण कबिले के मूल टोटेमों में एक, दो या दो से अधिक Fratry या शाखायें पायी जाती हैं। कबिले के सामाजिक क्रियाओं में स्वतंत्र टोटेम जैसा व्यवहार होते हैं। एक अन्य ध्यान देने योग्य तथ्य

यह है कि एक ही भौगलिक क्षेत्र के निवासी पड़ोसी कबिलों में परस्पर नातेदारी संबंधों के न रहते हुए भी उनमें समान टोटेम पाये जाते हैं।

टोटेम संबंधी जानकारी क्रम में देश विदेशों के विद्वान जैसे थार्सटन, रिजली, राशेल, कुक एवं आयार आदि की लिखित किताबों से टोटेमी सूची प्रस्तुत करने पर संभवत किसी भी प्रकार के कीड़े–मकौड़े, पेड़–पौधे, फुल–फल, जलजीव, घास–पात, पशु–पक्षी, भौतिक पदार्थ आदि नहीं छुटेंगें। इस तरह से ट्राइबल टोटेमों के नामकरण की व्यवस्था आदिम मानव समाज संगठन की आदिम जनजातीय विशेषता ही है।

लुइस हेनरी मर्गान के अनुसार जनजाति या आदिवासियों की गोष्ठीय टोटेम की पहचान पशु–पक्षी, कीडे–मकौड़े के नामों से ही की गई है। गोष्ठी वाचक पशु–पक्षी, कीड़े–मकौड़े आदि कबिलायी गोष्ठी के अपने–अपने टोटेम हैं। मर्गान ने आगे कहा है कि गोष्ठियों में जनसंख्या की वृद्धि के कारण जीवन–यापन के लिए अपने ही प्राचीन परम्परागत निर्दिष्ट निवास भूमि में स्थान परिवर्तन तथा गोष्ठी की शाखा–प्रशाखा का उद्भव हुआ है। इस तरह आदिम जनजाति कबिले के मनुष्य के लिए शादी–विवाह के अवसर पर अपनी टोटेम की पहचान निहायत जरूरी हुई, क्योंकि जनजातियों में स्वगोष्ठी या स्वटोटेम में शादी–विवाह धार्मिक निषिद्ध माना गया है।

आदिम टोटेमिक समाज के स्वरूप के सम्बंध में एम0 मोरेट का कहना है कि

The true totemic society rematks, M. Moret knows niether kings nor subjects. It is democtatic or communistic, all the members of the sept live is it on a footing of equality with respect to their totem.

अर्थात् – एम0 मोरेट का कहना है कि प्रात टोटेम समाज में न राजा न है प्रजा। यह समाज गणतांत्रिक अथवा साम्यवादी गौष्ठी या टोटेम के सभी मनुष्य ही टोटेम के सम्पर्क में बराबर–बराबर हैं।

टाबु या विधि निषेध

'निषेध' अंग्रेजी के (Taboo) टाबु शब्द का हिन्दी रूपान्तर है वस्तुत 'टाबु' अंग्रेजी भाषा का शब्द नहीं है। Taboo शब्द पोलीनेसियन भाषा का शब्द है। जिसका अर्थ है निषेध, नकारात्मक सामाजिक कानून। प्रत्येक धर्म या आचार अनुष्ठान में कुछ न कुछ कार्यों को करने की मनाही रहती है। इन्हीं को निषेधाज्ञा कहते हैं। आदिवासी अथवा जनजातीय समाज में निषेधज्ञाओं का अत्याधिक महत्व है। निषेधाज्ञायाऐं जनजातीय समाज के लिये अलिखित कानून हैं। उनमें विश्वास है जो लोग इन निषेधों का उल्लंघन करते हैं अलौकिक शक्ति उनको दण्ड देती है। डॉ0 मजुमदार ने लिखा है – निषेधाज्ञा को मानवजाति की सबसे प्राचीन अलिखित कानून संहिता माना जाता है और कहा जाता है कि वह देवताओं से भी प्राचीन हैं औंर उस युग की है जब समाज में धर्म नहीं था। टाबु का अर्थ वर्जित या निषेध है। प्रत्येक समाज में कुछ कार्य वर्जित या निषिद्ध माने जाते हैं उनको करने की कल्पना भी नहीं की जाती।

प्राचीन काल में मानव धारणाऐं घातक वस्तुओं के विषय में चमत्कारी शैलियों के विश्वास द्वारा प्रभावित थे। ऐसे अनेक निषेध थे जो मनुष्य के जीवन विषयक धारणाओं से सम्बंधित थे। आदिम मानव के लिए जीवन से सम्बद्ध प्रत्येक वस्तु के साथ भय अथवा रहस्यपूर्ण भावनाओं का योग था। भाविष्य की अमंगल आशंकाओं के प्रति पहले से सावधानी रखना जीवन के विविध अवसरों पर रहस्य भावना की अभिव्यक्ति करना आवश्यक समझा गया। इससे अनेक प्रतिबंध अथवा निषेध का उद्‌भव हुआ। जो आगे चलकर गर्भावस्था, जन्म, शैशव, किशोरावस्था, यौवन, विवाह, मृत्यु, शव–दाह आदि के विषय में सुनिश्चित निषेधों में परिणत हो गये हैं।

प्रथाएं एवं निषेधाज्ञाएं समाज में इसलिए प्रचलित एवं स्थित रहती हैं क्योंकि वे इस व्यवस्था के अंग हैं जिसके द्वारा समाज अपने को व्यवस्थित बनाये रखता है। प्रत्येक आदिम जनजाति की सामाजिक संहिता परम्परागत निषेध या

निषेधाज्ञाओं से परिपूर्ण होती हैं, जो प्राय कठोरतापूर्वक व्यक्तिगत संस्कार और सामाजिक व्यवहार की सीमाओं की निश्चित करते हैं।

आदिवासी या जनजाति समाज में निम्नांकित टाबु या निषेधाज्ञा पालन किया जाता है।

1. ट्राइबों की टोटेमिक निषेधाज्ञा – विभिन्न जनजाति में अपनी–अपनी ट्राइब होती हैं, ट्राइबों की टोटेम होती हैं, टोटेम को उस गोष्ठी या ट्राइब के लोग सामुहिक रूप से निषेध मानते हैं। जैसे–मुण्डा जनजाति का ट्राइब देमता का टोटेम लालचिंटी है। देमता ट्राइब का कोई भी सदस्य उनका टोटेम लालचिंटी यानि बेमुत को मारते नहीं, तथा खाते भी नहीं। उसी तरह तिर्की ट्राइब का टोटेम है भूरे रंग का जंगली कपोत। तिर्की ट्राइब का कोई भी सदस्य इस जंगली कपोत को मारते नहीं, खाने में भी यह निषिद्ध है। इसी तरह संथाल जनजाति में हांसदा ट्राइब का टोटेम है जंगली हंस और पाउरिया का टोटेम है 'पेरूआ' ये दोनों संथाल गोष्ठी के लोग अपना अपना टोटेम को मारते नहीं और खाना भी धार्मिक निषेद्य मानते हैं। कुड़मी जनजाति में हिन्दइआर गोष्ठी का टोटेम है ''कुचिआ मछली'' हिन्दइआर गोष्ठी का कोई भी सदस्य अपना टोटेम कुचिआ मछली मारना या खाना धार्मिक निषिद्ध मानते हैं। इसी तरह हंस्तुआर गोष्ठी का टोटेम 'कछुआ', बंसरिआर गोष्ठी का टोटेम 'बांस', मानुआर गोष्ठी का टोटेम 'हिरण' है। कुड़मी जनजाति के मानुआर गोष्ठी के कोई भी सदस्य हिरण मारना या उसका मांस खाना धार्मिक निषिद्ध मानते हैं। मुतरूआर गोष्ठी के लोग माकड़ा को, केटिआर गोष्ठी के लोग 'तसर कौआ' को एवं मुसुआर गोष्ठी के लोग 'मुसा' या 'चुहा' को टेटेम तथा टाबु मानते हैं।

कुडुख जनजाति में – खाखा ट्राइब 'कौआ' कुजुर का टोटेम कुजरी गाछ, केरकेटा का केरकेटा पक्षी अपना टोटेम के सदस्य को मारना या खाना धार्मिक निषिद्ध मानते हैं।

2. नातेदारी विधि निषेध – कुड़मी जनजाति के लोग अपने भाई की पत्नी यानि बोआसिन को छुते नहीं। अपनी स्त्री की बड़ी बहनों को भी छुते नहीं। अगर गलती से छुआ भी गया तो समाजिक अलिखित प्रायश्चित विधि के अनुसार छुत कर्म करते हैं। स्नान करते हैं या रहइन माटि अथवा गंगा पानी माथे पर छिड़क लेते हैं या सेवन करते हैं। भाई–बहन का एक कमरे में सोना मना है। ससुर–पुतोहु, बाप–बेटी, चाची–भतिजा, मामा–भागनी, मामी–भानजा को एक कमरेमेंसोना टाबु यानि धार्मिक निषिद्य है।

3.पर्व–त्यौहार में टाबु – जितिया पर्व तथा उँधी परब में अपनी गोष्ठी के किसी सदस्य की मृत्यु होने पर गोष्ठी भर में जितिया पर्व अथवा उँधी पिठा नहीं चलता है। संजत या उपवास के दिन जितिया पर्व में गोष्ठी भर में किसी के घर में नाया जन्म होने पर जितिया का निषेध समाप्त होता है। साल भर में उस बाचिक गोष्ठी में मृत्यु अशौच नहीं होने पर उस वर्ष उँधी चढ़ाया जाता है। मुण्डा–संथाल–कुड़मी–उरांव–खड़िया आदि जनजाति में इस टाबु को सख्ती के साथ मानते हैं।

4. जनजाति की औरतों के लिए हल जोतना सख्त मना है। जाहिरा थान या सारना थान में पूजा–पासा सम्पूर्ण निषिद्ध है। अगर कोई औरत हल जोतते पाई गयी तो जनजाति समाज के कठोर विधि विधान के अनुसार बाईसि व्यवस्था द्वारा प्रायश्चित करना पड़ता है।

5. एक ही गोष्ठी के सदस्य आपस में शादी–विवाह नहीं करते हैं। एक गोष्ठी यानि ट्राइब के सभी लोग एक ही माता–पिता के सन्तान–संतति माने जाते हैं। जैसे कुड़मी जनजाति में मूलतः 81 (एकासी) ट्राइब यानि गोष्ठियाँ हैं। टिडुआर गोष्ठी के साथ टिडुआर की शादी नहीं होगी। बंसरिआर की शादी बंसरिआर गोष्ठी में नहीं होगी बंसरिआर के साथ टिडुआर की शादी होगी। अपनी गोष्ठी को छोड़कर बाकि 80 अस्सी गोष्ठियों में शादी होगी। इसी तरह मुण्डा, सांथाल, कुडुख, खड़िया, हो आदि जनजातियों में भी स्वगोष्ठी छोड़कर बाकि गोष्ठियों के साथ शादी–विवाह होते हैं।

जनजातीय कबिला में अपने कबिला के अन्तर्गत ही शादी करने की रिवाज है। मुण्डा कबिला की शादी मुण्डा कबिला में ही होगी कुडुख कबिला के साथ नहीं इसी तरह कुड़मी कबिला की शादी कुड़मी कबिला में ही, अपनी गोष्ठी छोडकर मान्य है। संथाल, खड़िया या हो कबिला के साथ मान्य नहीं है।

अन्यान्य जनजाति की तरह ही कुड़मी जनजाति में भी देवर–भाभी में सांघा, साली–बहनोई में शादी प्रथा प्रचलित है।

मुण्डा कबिला

ट्राइब	टोटेम	विधि निषेध
सोय	सोलमाछ	मारते या खाते नहीं।
पूर्ति	चुहा	मारते या खाते नहीं।
नाग	सांप	मारते नहीं।
होरो	कछुआ	मारते या खाते नहीं।
आइन्द	एक प्रकार की मछली	मारते या खाते नहीं।
बालमुचु	कुमनी	व्यवहार नहीं करते।
बोदरा	मोर	मारते या खाते नहीं।
लङबोदरा	एक प्रकार का पक्षी	मारते या खाते नहीं।
टुटी	बाजरा	खाते नहीं।
हंसा	हँास	मारते या खाते नहीं।
हेस्सा	एक तरह का जंगली साग	खाते नहीं।
मुण्डु	बिरणी (बड़ आइग)	व्यवहार नहीं करते।
तेरौन	छोटी मधुमक्खी	मारते नहीं।
औड़ेया	बांस के ठइहर	व्यवहार नहीं करते।
ढोढराय	गाछ का खोल	व्यवहार नहीं करते।
केरकेटा	केरकेटा पक्षी	मारते या खाते नहीं।
तिड़ु	जंगली कंद	खाते नहीं।
संगा	सकरकंद	खाते नहीं।
भेंगरा	घोड़ा	व्यवहार नहीं करते।
धान	बेंगाधान	खाते नहीं।

ट्राइब	टोटेम	विधि निषेध
कोंगाड़ी	सफेद कौआ	मारते नहीं।
देमता	लालचिंटी (बेमुत)	मारते या खाते नहीं।
टोपनो	लालचिंटी	मारते नहीं।
बरला	बड़ का वृक्ष	काटते नहीं।
कण्डुलना	कुसुम फल	खाते नहीं।
नगटुआर	————	बेवस्त्र पूजा करते है।
होबर	पान पत्ता	व्यवहार नहीं करते।
भेंगराज	एक प्रकार की चिड़िया	मारते या खाते नहीं।
बुढ़	एक प्रकार का पेंड़	काटते नहीं।
कोड़ीयार	सिपि (फुटिया कौड़ी)	व्यवहार नहीं करते।
गुड़िया	एक प्रकार का वृक्ष	काटते नहीं।
जजवार	खट्टा साग (पलुआ)	खाते नहीं।
जज	इमली	खाते नही।
डंगडुंग	मछली	मारते या खाते नहीं।
तिर्की	भूरे रंग का जंगली कपोत	मारते या खाते नहीं।
तुयु	सियार	मारते नहीं।
पंडु विंग	नाग सांप	मारते नहीं।
बागे	बाघ	मारते नहीं पूजते हैं।
बनडो	बन बिलाई	मारते नहीं।
भालु	भालु	मारते नहीं पूजते हैं।
बरजो	कुसुम का फूल	काटते नहीं तेल गारते नहीं।
बड़ाउद	कामार छाती (खुखड़ी)	खाते नहीं।
सांडील	पक्षी	मारते या खाते नहीं।
सिरका	एक प्रकार का छोटा पेंड़	काटते नहीं।
सुरिन	मधुमक्खी पकड़ने वाला पक्षी	मारते नहीं।
हेमब्रम	लसोड़ा पेंड़	काटते या व्यवहार नहीं करते।
बरलंगा	बांस	काटते नहीं।

संथाल कबिला

ट्राइब	टोटेम	विधि निषेध
मुर्मू	नीलगाय	श्रद्धा, भक्ति, से पूजते हैं।
हेम्ब्रम	पानपत्ता	व्यवहार नहीं करते।
हांसदा	जंगली हंस	मारना तथा खाना निषिद्ध।
किस्कु	?	
सोरेन	एक तरह की पक्षी	मारना या खाना निषिद्ध।
टुडु	पक्षी	मारना या खाना निषिद्ध।
मराण्डी	घास (माड़रा घास ?)	काटना या व्यवहार करना निषिद्ध।
बास्के	नांग सांप	मारते नहीं।
बेसरा	बाजपक्षी	मारते नहीं।
चौड़े	छिपकली (Lizard)	मारते नहीं।
पउरिया	पेरूआ (कबुतर)	मारते नहीं खाते नहीं।
बेदिया	भेड़ा	मारते नहीं खाते नहीं।

संथाल कबिला में मूलतः बारह ट्राइब और टोटेम हैं। हर एक मूल में बारह बारह शाखायें हैं। जैसे सोरेन ट्राइब में माल सोरेन, जीहु सोरेन, सांख सोरेन। नीचे कुछ औंर शाखाओं को दर्शाया गया।

बोआर	बोआर माछ	मारते नहीं, खाते नहीं।
काहु	कोआ	मारते नहीं।
सिदुफ	खेड़घास	व्यवहार नहीं करते।
चिलबिंधा	चिल	मारते नहीं।
गुआ	गुआ (सुपारी)	काटते नहीं, खाते नहीं।
नाग	कोबरा	मारते नहीं।
सिकिया	सिकड़ि (चैन)	पहनते नहीं।
रापाज	हंसली	पहनते नहीं।
टागरिया	डाही	डाही में आग नहीं लगाते।
काड़ा	काड़ा	कष्ट नहीं पहुँचाते।
जीहु	एक तरह का पक्षी	वध नहीं करते, खाते नहीं।
सामद	सामर	मारते नहीं खाते भी नहीं।
केंचुआ	केंचुआ	मारते नहीं।

इत्यादि इत्यादि।

कुड़मि कबिला

ट्राइब	टोटेम	विधि निषेध
काड़ुआर	काड़ा (भैसा)	भक्ति श्रद्धा के साथ पूजते हैं।
कइरअआर	कईरा (केला)	पेड़ काटते नहीं केला नहीं खाते।
करकुआर	खांखडाबिछा	मारते नहीं।
कंड़रहअआर	कंडहर फल	पेड़ नहीं काटते, फल नहीं खाते।
कंहड़अआर	कंहंडा	कंहंड़ा फर नहीं खाते।
कड़िआर	फुटिया कड़ि	व्यवहार नहीं करते।
काइटुर	कटास	मारते नहीं।
कादिमार	कादखिंचि पक्षी	मारते नहीं खाते नहीं।
कांचिआर	कांचिडेहरी	व्यवहार नहीं करते।
कान बिंधा	ऊपर कान में छेद	अनिवार्य है।
केंकड़ुआर	खांखड़ा	मारते नहीं खाते नहीं।
केटिआर	तसर कौआ	सिझाते नहीं किड़ा को मारते नहीं।
केटरिआर	कठुआ	व्यवहार नहीं करते।
केसरिआर	केसरि घास	काटते नहीं, गेंड़ुआ खाते नहीं।
कुंदरिआर	कुंदरि फर	खाते नहीं।
कुंडिआर	कुंड़ि	व्यवहार में नहीं लाते।
खेंखुआर	खेंखिसिआर	वध नहीं करते।
खेसुआर	धान	खाते नहीं।
खेड़ुआर	खेड़ घास	काटते नहीं, व्यवहार नहीं करते।
खेडहुआर	खेड़हा	मारते नहीं, खाते नहीं।
खिरूआर	खीरा	खाते नहीं।
गुलिआर	घंघी	खाते नहीं।
गोठिआर	गंठि	खोदते नहीं, खाते नहीं।
गेरूआर	गेरू पत्थर	व्यवहार में नहीं लाते।
घंघुआर	घंघा	खाते नहीं।
चिलुआर	चिल	मारते नहीं।
चिड़ुआर	चिड़ु/चिड़रा	मारते नहीं खाते नहीं।

ट्राइब	टोटेम	विधि निषेध
चुटरिआर	चुटरि	मारते नहीं।
जुञआर	जुञआ / लहाचिमटी	मारते नहीं।
जुमरिआर	घेंड गेंउआरि पका	मारते नहीं।
जगटिआर	जोंगटि (केंचुआ)	मारते नहीं।
जुरूआर	जगइर / कान गोजर	मारते नहीं।
चंडरिआर	चौडरा	व्यवहार नहीं करते।
टिड्डुआर	टिडि / फड़िग	मारते नहीं।
टेटेआर	टिटु पाइख	मारते नहीं, खाते नहीं।
डंगुआर	डंगी	व्यवहार नहीं करते।
डुगरिआर	उई माका	फोड़ते या मारते नहीं।
डुमरिआर	डुमुर फल	खाते नहीं।
तितरिआर	तिरित पाईख	मारते नहीं, खाते नहीं।
दागरिआर	दाग देना	दागते नहीं।
छुरूआर	मेढ़क	मारते नहीं।
धान / धानुआर	बेंगाधान	खाते नहीं।
नाग / नागुआर	कोबरा सांप	मारते नहीं।
नांगटुआर	बेबस्त्र गुप्त पूजा	गुप्त पूजा करते है।
नेलुआर	नेल	मारते नहीं, खाते नहीं।
पांकडुआर	पांकइड़फर	पेड़ काटते नहीं, फल खाते नहीं।
पांडुरिआर	पंड़की पाइख	मारते नहीं, खाते नहीं।
पुनअरिआर	पुइ साग	खाते नहीं।
बनसुअर	वन बरहा	मारते नहीं, खाते नहीं।
बंसरिआर	बांस	काटते नहीं, खाते नहीं।
बांदुआर	बांदा	व्यवहार में नहीं लाते।
बानुआर	बानासुना	नहीं करते।
बिलुआर	बिलाइ	मारते नहीं।
बुंदिआर	बुंदि / बड़आइग	व्यवहार नहीं करते।
बेहडुआर	बेहड़ा फल	व्यवहार नहीं करते।

ट्राइब	टोटेम	विधि निषेध
बकुआर	बक	मारते नहीं, खाते नहीं।
बेडुआर	बेड	व्यवहार नहीं करते।
बेमुआर	बेमुत चींटी	मारते या खाते नहीं।
मगुआर	कुमहीर (मगरमच्छ)	मारते या खाते नहीं।
मान/मानुआर	सांअर हरिण	मारते या खाते नहीं।
मुतरूआर	माकड़ा	मारते नहीं।
मुरमु	सांउनि गाय	पूजते हैं।
मुसुआर	मुसा/इंदुर (चुहा)	मारते या खाते नहीं।
लाठोआर	लाठाचंगा	व्यवहार नहीं करते।
लुतिआर	लुति माछी	मारते नहीं लुति गुड़ा खाते नहीं।
सांखुआर	सांख/सांखा (शंख)	सांख फुंकते नहीं सांखा पहनते नहीं।
सिंकुआर	सिंका	सिंका का दाग लेते नहीं।
सिखुआर	फुरचुँदी/सिखा (चोटी)	रखते नहीं।
सिखिआर	मउर पाईख (मोर पंख)	मारते नहीं, खाते नहीं।
सिंगुआर	सिंगा	फुंकते नहीं।
सिंह/सिंहुआर	सिंह (Lion)	मारते नहीं पूजते।
हंसतुआर	काछिम	मारते या खाते नहीं।
हांसदा	जंगली हांस	मारते नहीं, खाते नहीं।
हांसदागिआर	बाईल हांस	मारते नहीं खाते नहीं।
हिंदइआर	कुचिया माछ	मारते नहीं खाते नहीं।
हेमरामिआर	पान पाता	व्यवहार नहीं करते हैं।
उखअरिआर	उखइर	व्यवहार नहीं करते हैं।
उँधिआर	उँधि	व्यवहार नहीं करते हैं।
बासा/बासागिआर	सिकरा पाइख	मारते नहीं खाते नहीं।
लाकडुआर	लाकड़ा (लकड़बग्घा)	मारते नहीं पूजते हैं।
काछुआर	छोटा काछिम (कछुआ)	मारते नहीं खाते नहीं।

कुड़मी ट्राइबों की शाखा

काड़ुआर – काड़ाकाटा काड़ुआर, सिंका काटा काड़ुआर, टाकाकाटा काड़ुआर अंध चावार काड़ुआर।

डुमरिआर – घोद डुमरिआर, टंकिपिटा डुमरिआर।

बंसरिआर – करिल बंसरिआर, झांपा बंसरिआर, बांसि बंसरिआर।

पुनअरिआर – पात पुनअरिआर, पइना पुनअरिआर।

केटिआर – गुटि केटिआर, काटिआ केटिआर।

टिडुआर – टिडी टिडुआर, फडिंग टिडुआर।

मुतरूआर – छांछ मुतरूआर, मुतरूआर।

डुंगरिआर – मोर डुंगरिआर, माका डुंगरिआर।

बानुआर – बाघ बानुआर, जाल बानुआर, हाथी बानुआर, घोड़ा बानुआर, भालु बानुआर, बिड़हर बानुआर कुइआ बानुआर।

दुरूआर – राज दुरूआर, टुरि दुरूआर।

बेमुआर – थला बेमुआर, चिमटि बेमुआर।

हिंदइआर – साँची (पाथरचाटा) हिंदइआर, कुचिआर हिंदइआर।

तितरिआर – फाञस तितरिआर, जाल तितरिआर।

पांडुरिआर – फाञस पांडुरिआर।

बकुआर – केस बकुआर, चुंधि बकुआर।

जुरूआर – जुरूआर, कुइली जुरूआर।

केंकडुआर – सांची केंकडुआर, दुधि केंकडुआर, भेलु केंकडुआर।

करकुआर – सांची करकुआर, कारि करकुआर।

केसरिआर – झांपा केसरिआर, गुआ केसरिआर।

सांखुआर – साख सांखुआर, सांखा सांखुआर।

मुसुआर – सांड मुसुआर, भुञ मुसुआर, चांड• मुसुआर।

लुतिआर – मम लुतिआर, गुड लुतिआर।

सिंकुआर – पका सिंकुआर, सइलता सिंकुआर।

लाटोआर – खाड़ लाटोआर, गाउआ लाटोआर।

कुडमी ट्राइबों की शाखा

ट्राइब	टोटेम	विधि निषेध
काड़ा काटा काडुआर	काड़ा (भैस)	आखड़ा पूजा में काड़ा बलि
सिका काटा काडुआर	?	देते हैं।
अंध चावार काडुआर	चमड़ा या शिरा का अंद	जुआल में नहीं जोतते हैं।
घोद डुमरिआर	डुमर फल का घोद (गुच्छा)	खाते नहीं हैं।
टंकि पिटा डुमरिआर	बिना घोद का डुमर	खाते नहीं हैं।
करिल बंसरिआर	बांस का करिल	खाते नहीं हैं।
झांपा बंसरिआर	बांस झाड़	काटते नहीं हैं।
बांशि बंसरिआर	बांस की बंसी	फुंकते नहीं हैं।
पात पुनअरिआर	पुई साग (पत्ता)	खाते नहीं हैं।
पादइना पुनअरिआर	पुई खाड़ही	खाते नहीं हैं।
गुटि केटिआर	तसर का कौआ	सिझाते नहीं।
काटिआ केटिआर	तसर सुता का कपड़ा	पहनते नहीं।
टिडी टिडुआर	पंगवल	मारते नहीं।
फडिंग टिडुआर	फेड़गा/फडिंग	मारते नहीं।
मुतरूआर	दीवार का माकड़ा	मारते नहीं।
छांछ मुतरूआर	छांछा का माकड़ा	मारते नहीं।
मोर डुंगरिआर	मोर	शादी में पहनते नहीं।
उइ मांका डुंगरिआर	उइ माका	मारते/फोड़ते नहीं।
बाध बानहुआर	बाघ	देवता जैसा पूजते हैं।
जाल बानहुआार	डाही में आग	नहीं जलाते हैं।
हाथी बानहुआर	हाथी	श्रद्धा से पूजते हैं।
घोड़ा बानहुआर	घोड़ा	श्रद्धा से पूजते हैं।
भालु बानहुआर	भालु	श्रद्धा से पूजते हैं।
बिड़हार बानहुआर	बंदर	श्रद्धा से पूजते हैं।
कुईआ बानहुआर	कुइआ	श्रद्धा से पूजते हैं।

ट्राइब	टोटेम	विधि निषेध
राज दुरूआर	राजबेंग	मारते नहीं।
टुरी दुरूआर	टुरीबेंग	मारते नहीं।
भात बेगुआर	बेमुत थाली का भात	खाना निषेध।
चिमटी बेगुआर	बेमुत चिमटी	मारना नहीं।
सांची हिंदइआर	पाथर चाटा मछली	मारते नहीं खाते नहीं।
कुचिआ हिंदइआर	कुचिआ मछली	मारते/खाते नहीं।
फाअस तितरिआर	फाअस में मारा गया तीतर	खाते नहीं।
जाल तितरिआर	जाल में मारा गया तीतर	खाते नहीं।
फाअस पांडुरिआर	फंसरी में मारा गया पंड़की	खाते नहीं।
केस बकुआर	केस बगुला	मारते नहीं।
चुंधि बकुआर	चुंधि बगुला	मारते नहीं।
सांची केंकडआर	लाल खांखड़ा	मारते/खाते नहीं।
दुधि केंकडआर	उजला खंखड़ा	मारते/खाते नहीं।
भेलु केकडुआर	भेलुआ खंखड़ा	मारते/खाते नहीं।
सांची करकुआर	लाल खंखड़ा बिछा	मारते नहीं।
कारि करकुआर	काला खांखड़ा बिछा	मारते नहीं।
सांख साखुआर	सांख	फुंकते नहीं।
सांखा साखुआर	सांखा	पहनते नहीं।
सांड मुसुआर	सांड़का मुसा	मारते/खाते नहीं।
भूअ मुसुआर	भूअ कड़ा मुसा	मारते/खाते नहीं।
चांड मुसुआर	चांड़रा मुसा	मारते/खाते नहीं।
मम लुतिआर	लुति माछी का मम	व्यवहार नहीं करते।
गुड लुतिआर	लुति गुड़	गारते/खाते नहीं।
पका सिकुआर	एक तरह का कीड़ा	मारते नहीं।
सइलता सिकुआर	सइलता	सइलता जलाते नहीं।

कुड़ख (उरांव) कबिला

ट्राइब	टोटेम	विधि निषेध
लाकड़ा	लाकड़ा	मारते नहीं, पूजते हैं।
एक्का	कछुआ	मारते नहीं खाते नहीं।
खलखो	एक प्रकार की मछली	मारते/खाते नहीं।
मिंज	एक प्रकार गाछ (पेंड़)	काटते नहीं फल खाते नहीं।
तिर्की	टेरी पक्षी	मारते नहीं, खाते नहीं।
खेस	एक प्रकार का धान	माड़ का छाली खाते नहीं।
कुजुर	कुजरी गाछ	काटते नहीं।
तिग्गा	बंदर	मारते नहीं, पूजते हैं।
केरकेटा	केरकेटा पक्षी	मारते नहीं खाते नहीं।
लिंडुआर	जेंगटी	मारते नहीं।
बाडा	बड़गाछ	काटते नहीं फल खाते नहीं।
बेक	नमक	खाते नहीं।
किसपोट्टा	घुसुर/बरहा	मारते नहीं, खाते नहीं।
टोप्पो	एक तरह की पक्षी	मारते नहीं खाते नहीं।
खाखा	कौआ	मारते नहीं।
बाखला	एक तरह का वृक्ष	काटते नहीं।
किण्डो (किड़ो)	पक्षी	मारते नहीं खाते नहीं।
कच्छप	काछिम	मारते नहीं खाते नहीं।
सांखुआर	सांख/सांखा	सांख फुंकते नहीं सांखा पहनते नही।
बाघा	बाघ	मारते नहीं पूजते हैं।
हांससा	काछिम	मारते या खाते नहीं।
खोयोपा	जंगली कुत्ता	मारते नहीं।
मुजनी	एक प्रकार का फल	खाते नहीं।
पिण्डो	एक प्रकार की मछली	खाते नहीं।
कुहु	कोयल पक्षी	मारते नहीं।
गोदो	जल जन्तु	मारते नहीं।
पान्ना	लौह पत्थर	व्यवहार नहीं करते हैं।

ट्राइब	टोटेम	विधि निषेध
हुर हुरिया	विस रहित सांप	मारते नहीं।
गाडी	रोरी नामक पेड जो लाल रोऐदार फलता है।	काटते नहीं फल खाते नहीं।
गिधि	गिद्ध पक्षी	मारते नहीं।
बराह	बराह (सुअर)	मारते नहीं खाते नहीं।
बिनहा	मछली	मारते नहीं खाते नहीं।
कइआ/खौखइआ	छोटी जात का सियार	मारते नहीं।

इत्यादि लगभग 96 छियानब्बे प्रकार के ट्राइब हैं।

खड़िया कबिला

ट्राइब	टोटेम	विधि निषेध
बा	धान	खाते नहीं।
किड़ो	बाघ	मारते नहीं पूजते हैं।
टेटे	पक्षी	मारते नहीं खाते नहीं।
कुल्लु	कछुआ	मारते नहीं खाते नहीं।
बिलुंग	नमक	खाते नहीं।
टोप्पो	लकड़ी खोदने वाली पक्षी	मारते नहीं, खाते नहीं।
सोरेंग	चट्टान	व्यवहार नहीं करते।
डुंगडुंग	कुचिआ मछली	खाते नहीं।
केरकेटा	पक्षी	मारते नहीं खाते नहीं।

असुर कबिला

बग	बेंग (मेंढक)	मारते नहीं।
आइन्द	एक प्रकार की मछली	खाते नहीं।
टोप्पो	लकड़ी खोदने वाली पक्षी	मारते नहीं खाते नहीं।
केरकेटा	पक्षी	मारते नहीं खाते नहीं।
टिहिटिओ	टिहिटिटि पक्षी	मारते नहीं खाते नहीं।
भारेवा	?	
उल्लु	फेचा	मारते नहीं खाते नहीं।
खुसार	एक प्रकार का धान	खाते नहीं।
हिदइआर	कुचिआ मछली	खाते नहीं।

हो कबिला

ट्राइब	टोटेम	विधि निषेध
पूर्ति	चुहा (चुटरी)	मारते या खाते नहीं।
बालमुचु	कुमनी	व्यवहार नहीं करते।
बारला	बडगाछ	काटते नहीं पूजते हैं।
जोजो	इमली	खाते नहीं।
सामड़	सामर हिरण	मारते नहीं खाते नहीं।
हेससा	दुधिया मिट्टी	व्यवहार नहीं करते।
हांसदा	जंगली हँस	मारते नहीं खाते नहीं।
सिरका	एक प्रकार का छोटा पेड़	काटते नहीं।
जमुदा	झरना	पानी व्यवहार नहीं करते।
बागे	बाघ	मारते नहीं पूजते।
सुरिन	मक्खी पकड़ने वाली लाल पक्षी	मारते नहीं खाते नहीं।
देवगम	एक प्रकार चिड़िया	मारते नहीं खाते नहीं।
सान्डील	एक प्रकार चिड़िया	मारते नहीं खाते नहीं।
कुलुण्डिया	कलछुल	व्यवहार नहीं करते।
तुबिद	चुहे का बिल	खोदते तथा बंद नहीं करते।
तियु	सियार	मारते नहीं।
लुगुन	तसर कौआ	सिझाते नहीं।
मेलगण्डी	पीपल का पेड़	काटते नहीं।
काइका	एक प्रकार का पेड़	काटते नहीं।
कुदादा	जामुन रस	खाते नहीं।
अंगरिआ	काठ कोयला बनाने वाला डाही	आग नहीं लगाते।
हेम्बरीम	पान पत्ता	खाते नहीं।
जोंको	जोंक	मारते नहीं।

इसके अलावे और ट्राइबः–

बान्डरा, बोदा, बिरूआ, जेराइ, सुण्डी, पिंगुआ, बोइपाइ, बरनो, बंकिरा, सिंकु, केराइ, चाम्पाइ, कुण्डिया, दोरइबुरू, लागुरी, गगराइ, लमरा, मुण्डरी, अल्डा, बारी, बुड़ीउली, वांगसिंह, बारदा, तामसोय, होनहागा, मारला, साइसुम, लिंगुआ, डांगिल, पोड़ेया, गुजा, बरजो, गुइया, इत्यादि।

आदिम निवास भूमि

आदिवासी या जनजातियों की अपनी अपनी प्रचीन परम्परागत आदिम निवास भूमि होती है। वे एक विशेष भौगलिक क्षेत्र में बसवास करते हैं। जनजाति धुमक्कड़ भी होती है लेकिन अपना भौगलिक क्षेत्र में ही आवश्यकतानुसार घुमती है तथा बसवास करती है। जनसंख्या की वृद्धि, प्रातिक प्रकोप, आपसी तनाव के कारण गुजर बसर हेतु स्थान परिवर्तन करती है। इस तरह से जमीन की स्थायी मालिकाना निश्चित नहीं होने तक इधर से उधर स्थान बदलती रहती है। बीसवीं शताब्दी के शुरूआत में जमीन की स्थायी मालिकाना हक के निर्धारण के कारण स्थान परिवर्तन में बाधा उत्पन्न होने लगी। तब इनके स्थायी गांव बसने लगे। सरकारी अनुशासन में आपसी द्वन्दता में रोक लगने लगी स्थानीत्वता सुदृढ़ हुई।

झारखण्ड क्षेत्र में जनजातियों के गुजर बसर के कई स्तरों को पार करना पड़ा होगा। उन स्तरों को निम्नलिखित रूपों में विभक्त किया जा सकता है :–

1. वन्य स्तर – प्रथम वन्य स्तर, द्वितीय वन्य स्तर, तृतीय वन्य स्तर
2. बर्बर स्तर – प्रथम बर्बर स्तर, द्वितीय बर्बर स्तर, तृतीय बर्बर स्तर
3. पशुपालन स्तर – प्रथम पशुपालन स्तर, द्वितीय पशुपालन स्तर, तृतीय पशुपालन स्तर।
4. कृषिस्तर – प्रथम कृषि स्तर, द्वितीय कृषि स्तर, एवं तृतीय कृषि स्तर। इसके बाद सामाजिक समझौता युग तथा आधुनिक विकासवादी जीवनयापन में प्रवेश किया।

जनश्रुति, लोककथा और प्रवाद वाक्यों के अनुसार कहा जा सकता है – यह झारखण्ड क्षेत्र वन्य युग में रणवन–विजुवन–अरूण वन–बाधावन और झाड़ीवन के रूप में पाँच–भागों में विभक्त था। इतिहास तथा विभिन्न विद्वानों के मतानुसार – प्रथम वन्य स्तर में पाश्विक जीवन यापन करते होंगे। द्वितीय वन्य स्तर में यहाँ के आदिम निवासी जनजातियों की गोष्ठी परिचित हुई होगी। पशुपालन स्तर में गोष्ठियों के लोग अपने अपने पशुओं विशेष कर गोधनों को अपने विशेष चिन्ह से चिन्हित करने लगे जो जनजातियों में आजतक प्रचलन में हैं।

जीविका निर्वाह के आधार पर यहाँ के निवासी जनजातियां

मूलतः दो भागों में विभक्त हुए जिन्हें अरण्यजीवि और कृषिजीवि कहा गया। कृषिजीवि लोग नदी किनारे तथा दह अर्थात् हद अथवा जलाशय के सामने बिड़ा वास्तु बनाने लगे इस तरह से दह के सामने बिड़ा स्थापना के कारण उन जनमानस दह् बिड़–द्रविड–द्राविड़ कहलाने लगे। इस तरह से झारखण्ड क्षेत्र के आदिम निवासी कुड़मी जनजाति एवं कुडुख (उरांव) जनजाति के लोग द्रविड़ कहे जाते हैं। आस्ट्रेलिया एवं एशिया के मिश्रित एथनिक्सों यानि रेसों को अस्ट्रिक कहा जाता है। विभिन्न जनजातियों के आदिम स्थायी निवास के कारण विभिन्न नामों से अभिहित होने लगे जैसे कोल्हान क्षेत्र, सांथाल परगना, दामिन–ई–कोह, सिख–शिखर–नागपुर–अठारह परगना (आधाआधी खड़अगपुर) इत्यादि। स्वभावतः यहाँ की जनजातियाँ अपनी आदिम निवास भूमि के भौगलिक क्षेत्र में एक निश्चित भू–भाग में ही बसवास करती आ रही हैं किन्तु आवश्यकतानुसार निर्दिष्ट क्षेत्र अन्तर्गत स्थानान्तरित बसवास भी करते आ रहे हैं। उस तरह से यहाँ के विभिन्न आदिम जनजातियाँ झाड़खण्ड में सर्वत्र पाये जाते हैं।

मुण्डा जनजाति :– इनकी आदिम निवास भूमि वर्तमान छोटानागपुर राँची जिला, सिंहभूम जिला, कोल्हान क्षेत्र रही होगी। वर्तमान में झारखण्ड के यत्र तत्र के निवासी हैं।

संथाल जनजाति :– इस जनजाति की आदिम निवास भूमि वर्तमान परिचय बंगाल के अन्तर्गत बांकुड़ा जिला के खातड़ा सब–डिविजन एवं मिदनापुर जिला के झाड़ग्राम महकुमा क्षेत्र जिसका प्राचीन नाम संत देश तथा सांओत क्षेत्र था। सांओत के निवासी के कारण इन्हें सांओन्तर कहा जाता था। कालान्तर में सांउतार कहे जाने लगे वर्तमान में सांउताल / सांथाल कहे जाते हैं। उन्नीसवी शताब्दी के प्रथम दशक के दौरान सांथाल जनजाति वर्तमान पश्चिम बंगाल के बीरभूम से बिहार के सांथाल परगना जागीर के हण्डवे तथा बेलपट्टा में यथेष्ट संख्या में आकर बस गये। इस तरह से यह जनजाति संथालपरगना एवं सिंहभूम (कोल्हान क्षेत्र), हजारीबाग, धनबाद गिरीडीह, बोकारो जिला में निवास

करती है। इसकी कुछ आबादी भागलपुर, पूर्णिया, सहरास, मुंगेर, प्रमण्डल में भी पायी जाती है। इसके अलावा संथाल जनजाति पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, मध्य प्रदेश तथा आसाम राज्य में भी बसवास करती है। वर्तमान झाड़खण्ड क्षेत्र में ये सर्वत्र निवास करते हैं।

कुड़मी जनजातिः– वन्य स्तरों में आदिम कुड़मी जनजाति की आदिम निवास भूमि, रणवन–बिजुवन–अरूणवन–बाधावन और झाड़िवन था। कुड़माली जनश्रुति प्रवाद वाच्य में अभी भी कहा जाता है :–

गाय गेलो रणे बने
बाछुर गेलो बिजु बने
बागाल गेलो अरूण बनें
कानी खड़ि घुरि घुरि खज गे ।

कालान्तर में स्थायी बसवास में आदिवासी स्वशासन के अनुसार सिख–शिखर–नागपुर अठारह परगना कुड़मी आदिवासी स्वशासन के चार क्षेत्र या देश बने, जो आधुनिक 26 जिलों का वृहद् झारखण्ड क्षेत्र के अभिहित है। बिजुवन अरूण वन एवं बाधावन जनजाति कुड़मियों की घनी आबादी वाली आदिम निवास भूमि रही है। मानभूम, सिंहभुम, हजारीबाग, बांकुड़ा जिला का भिलाइडोहा, फुलकुसमा, राइपुर, सुपुर अम्बिकानगर, सिमलापाल, कुइलापाल और छातना ये आठ परगना एवं मिदनापुर जिला अन्तर्गत प्राचीन संत देश के दस परगना तथा सिखिभूम यानि सिखि अर्थ में 'मयुर' अर्थात मयुरभंज क्योंझर आदि क्षेत्र वर्तमान छोटानागपुर का पूर्वी सिंहभूम, पश्चिमी सिंहभूम (कोल्हान क्षेत्र) रांची, हजारीबाग गिरीडीह, धनबाद बोकारो तथा संथाल परगना के साहेबगंज, गोड्डा आदि क्षेत्रों में पश्चिम बंगाल के पुरूलिया बांकुडा के खातड़ा सब–डिविजन वर्धमान क्षेत्र में तथा आसाम, बंगलादेश में भी जनजाति कुड़मी निवास करते हैं। इसके अलावे भी झारखण्ड में सर्वत्र कुड़मी जनजाति का निवास है।

कुडुख (उरांव) जनजाति :– उरांव जनजाति के लोग छोटानागपुर पठार के आदिवासी कबिलों में अधिकांश रूप में पाये जाते हैं। उरांव जनजाति के लोग संख्या में भी अधिक हैं। ये लोग अपने आपको कुडुखु कहते हैं द्रविड़ भाषा में इसका अर्थ मनुष्य होता है।

खडिया जनजाति :– खड़िया झारखण्ड की एक जनजाति है। इस जनजाति के लोग मुख्य रूप से सिंहभुम, मानभूम, मयुरभंज के अलावे उड़ीसा के

यत्र तत्र तथा मध्यप्रदेश में निवास करते हैं। जीवन–यापन की ताड़ना में विभिन्न क्षेत्रों में जा बसें हैं।

हो जनजाति :– हो जनजाति कोल्हान (Kolhan) क्षेत्र में बसवास करते हैं। कोल्हान क्षेत्र वर्तमान सिंहभूम सराईकेला, खरसवां क्षेत्र को कहते हैं। ये जनजाति पड़ोसी राज्य उड़िसा के मयुरभंज, क्योंझर में भी निवास करते हैं। अभाव अनटन में छोटानागपुर भौगलिक क्षेत्र के जहाँ तहाँ निवास करते हैं।

एथनिकस

एथनिसिटी जनजाति की विशेष विशेषता है जिन्हें पहले ही उल्लेखित किया गया है। जनजाति लोग ट्राइबाल (गोष्ठी संगठित) टोटेम विश्वासी एवं धार्मिक विधि निषेध मानने वाले होते हैं। नृतात्विक विद्वानों के अनुसार मुण्डा जनजाति मूलतः 84 (चौरासी) गोष्ठियों में संगठित है। संथाल जनजाति की मूलतः 12 (बारह) गोष्ठियों में एक एक गोष्ठी की बारह–बारह शाखाएं होती हैं। कुडमी जनजाति मूलतः 9 (नौ) श्रेणी के हैं। हरेक श्रेणी में नौ नौ गोष्ठियाँ हैं। इस तरह से मूलतः 81 (एकासी) मूल गोष्ठियों में संगठित हैं। कुडुख अथवा उरांव जनजाति मूलतः 96 (छियानब्बे) गोष्ठियों में संगठित है। खड़िया जनजाति के कुल 9 (नौ) गोष्ठियाँ हैं। हो जनजाति में मूलतः करीब 90 (नब्बे) गोष्ठियाँ हैं। इनके अलावे विभिन्न क्षेत्रों में और गोष्ठियाँ है। जनजाति गोष्ठियों के कई फात्रियाँ है। प्रातिक, राजनैतिक, सामाजिक आदि कारणों से हो सकता है कि उक्त जनजातियों की कुछ गोष्ठीयाँ अन्यत्र चली गयी होंगी या चली गयी। अथवा अपना गोष्ठी परिचय भूल गये होंगे। जनसंख्या की वृद्धि के कारण गोष्ठियों की शाखा प्रशाखाओं में भी वृद्धि हुई है। एथनिकस या ट्राईब को रेस भी कहा जाता है। इसके समुह संगठन को अंग्रेजी में कनफेडारेसी और ट्राइबस या रेसेस कहते हैं। जैसे– मुण्डा, संथाल, कुडमी, उरांव, (कुडुख), खड़िया एवं हो अपनी अपनी गोष्ठियों को कनफेडारेसी या समुह कहते हैं इसे कबिला भी कहा जाता है। गोष्ठियों के समुह का नाम भी टोटेमिक होता हैं।

जनजातीय कबिलावाची भाषा

नृतत्व विद्वान बोआस, जेकब्स तथा स्टर्न, गिलिन तथा गिलिन, डॉ मजुमदार, रिचर्ड तथा इम्पीरियल गजेटियर के अनुसार जनजाति या आदिवासियों या जनजातियों की अपनी अपनी जनजातीय कबिलावाची मातृभाषा होती है। जार्ज ग्रियरसन के अनुसार लेंग्यूस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया में मुण्डा जनजाति कबिला की मातृभाषा मुण्डारी, सांथाल जनजाति कबिला की मातृभाषा सांथाली, कुड़मी जनजाति कबिला की मातृभाषा कुड़माली, कुडुख (उरांव) जनजाति कबिला की मातृभाषा कुडुख (उरांव), खड़िया जनजाति कबिला की मातृभाषा खड़िया, हो जनजाति कबिला की मातृभाषा हो है। भाषाविदों के अनुसार मुण्डारी सांथाली खड़िया एवं हो भाषा आष्ट्रिक ग्रुप की भाषा है तथा कुड़माली एवं कुडुख या उरांव भाषा द्रविडीय भाषा परिवार की भाषा है। 1977 ई0 में रांची विश्वविद्यालय रांची में जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषाओं के पठन–पाठन की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई तथा विभाग खुले। जनजातीय कबिला वाची मुण्डारी, संथाली, कुड़माली, कुडुख (उरांव), खड़िया एवं हो भाषाओं का पठन–पाठन रांची विश्वविद्यालय रांची, विनोवाभावे विश्वविद्यालय हजारीबाग एवं भागलपुर विश्वविद्यालयों में जारी है। झारखण्ड सरकार माध्यमिक विद्यालयों में भी इन भाषाओं की पढ़ाई की प्रक्रिया प्रारम्भ करने जा रही है। विश्वकवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर की उक्ति में "मातृभाषा मातृदुग्ध सम" के तर्ज पर झारखण्ड राज्य में मातृभाषाओं की पढ़ाई प्रारम्भिक स्तरों से होगी।

//

जनजातीय संस्कृति

भारत में आदिम कबिलाओं की आदिम संस्कृति रही है। कबीलाई जनसंख्या के सांस्कृतिक विकास को तीन स्तरों में श्रेणी विभाजन किया जा सकता है। प्रथम : आदिम कबीले की आदिम जनजाति संस्कृति, द्वितीय : हिन्दु प्रभावित आदिम संस्कृति एवं तृतीय : ईसाई प्रभावित आदिम संस्कृति। हिन्दू तथा ईसाई–प्रभावों से रहित आदिम जनजाति संस्कृति की पृथकता पर अभी तक आक्रमण नहीं हुआ है। कबिलावाची जनजाति संस्कृति की मूलतः दो धारायें हैं – द्रविड़ संस्कृति एवं आस्ट्रीक संस्कृति। झारखण्ड के प्रांगन में अतिप्राचीन युग से अति आदिम (Primitive) जनजातियों के अपनी निश्चित आदिम निवास भूमि में स्थायी बसवास के कारण द्रविड़ संस्कृति एवं अस्ट्रिक संस्कृति ने एक दूसरे को किसी न किसी सांस्कृतिक पहलुओं पर प्रभावित किया है। फिर भी इनकी अक्षुन्नता बरकरार है। आदिम जनजाति संस्कृति के धारक वाहक अपनी आदिम परम्परागत आदिवासी स्वशासन द्वारा प्रथायिक विधि से प्रशासित हैं मुण्डा, संथाल, कुड़मी, खेड़िया, कुडुख (उरांव), हो कबिलाओं के जनजाति समुदाय प्रथायिक विधि द्वारा प्रशासित होते हैं।

कालान्तर में हिन्दु विधि द्वारा प्रशासित आर्य यानि हिन्दु संस्कृति के लोगों का अनुप्रवेश इस क्षेत्र में हुआ। किसी भी संस्कृति का विकास शुन्य में नहीं होता है। अकेलेपन में भी नहीं होता है, परस्पर आदान प्रदान में ही होता है। उस समय कौन सी संस्कृति किसे क्या देती है, किससे क्या लेती है उसपर निर्भर करता है उन संस्कृति के लोगों के आर्थिक विकास और सामाजिक विकास। अधिक विकसित लोग कम विकसित लोगों का सभी क्षेत्रों में शोषण करते हैं। कम विकासित लोग भी किसी न किसी पहलुओं पर अधिक विकासित लोगों को प्रभावित करते हैं। द्रविड़ एवं आस्ट्रीक संस्कृति ने भी बहिरागत हिन्दु संस्कृति को प्रभावित किया है। केला, सुपारी, नारियल एवं सिंदुर मूलतः द्रविड संस्कृति के नैवैद्य हैं। जिसको हिन्दु संस्कृति ने ग्रहण ककया है। जनजाति मूर्तिपूर्जक नहीं प्रति पूजक हैं ये वैदिक नहीं अवैदिक हैं। जनजाति हिदु धर्म के धारक वाहक नहीं हैं बल्कि सारना अथवा जाहिरा धर्म को मानते हैं।

इस तरह से अवैदिक जनजातियों को अपनी संस्कृति कुड़मी संस्कृति, सांथाली संस्कृति, खड़िया संस्कृति तथा हो संस्कृति की परम्परागत धाराएँ झारखण्ड क्षेत्र में आजतक प्रवाहित हैं। अवैदिक जन्म संस्कार, विवाह संस्कार, मृत्यु संस्कृति, पर्व त्यौहार आदि में आदिमता की परिचिति बरकरार है।

जनजाति जनजीवन

जनजाति या आदिवासियों की आदिम परम्परागत जीवन शैली है। जन्म–विवाह– मृत्यु संस्कार, परब, पाली, धर्म, जादु–टोना, आचार अनुष्ठान आदि में आदिमता का स्वरूप अमिट है।

मुण्डा जनजाति

पहले ही कहा गया है कि मुण्डा जनजाति के लोग छोटानागपुर एवं रांची जिले में बसे हुए हैं। कोलारियन कबिले में मुण्डा जनजाति प्रमुख मानी जाती है। ये लोग अपने आपको होरोको कहते हैं जिसका अर्थ मनुष्य है। इन्हें कोल नाम से भी पुकारा जाता है। ये अस्ट्रो–एशियाई मिश्रित आस्ट्रीक कहे जाते हैं।

सामाजिक व्यवस्था – मुण्डा समाज पितृसत्तात्मक बनता जा रहा है। परिवार को किली या ट्राइब का नाम दिया गया है। प्रत्येक किली का अलग अलग नाम है, इसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। किलि टोटेमिक होते हैं। किलियों का मूल संगठन कबिला कहा जाता है। सामाजिक प्रशासन के लिये कई गावों को मिलाकर पड़हा बाईसि की व्यवस्था है। पड़हा व्यवस्था में मुण्डा और मानकी का पद सर्वोच्च है। इनके पुरोहित या पुजारियों को देउरी या पाहान कहते हैं। इनकी अपनी पंचायत व्यवस्था है। मुण्डा जनजाति में पड़हा बाइसि अथवा पंचायत का निर्णय न मानने पर उस दोषी व्यक्ति को सामाजिक दण्ड दिया जाता है। यहाँ तक कि उस व्यक्ति को गाँव से बाहर भी कर दिया जाता है। वर्तमान में लोग शिक्षा में रूचि ले रहे हैं। स्त्री–पुरूष उच्च शिक्षा में शिक्षित होते जा रहे हैं। इनकी अपनी कबिलावाची भाषा है जिसका नाम मुण्डारी है।

वेशभूषा – मुण्डा जनजाति के लोग हृष्ट पुष्ट और मंझोले तथा छोटे कद के होते हैं। सिर लम्बा, नाक मोटी, चेहरा चौड़ा और होंठ मोटे होते हैं। ये लोग कमर में रंगीन–धारीदार वस्त्र लपेटते हैं जो बोताई कहलाता है। बच्चे तथा वृद्ध कोपीन या लंगोटी (भगुआ) पहनते हैं। बाहर जाते समय धनवान लोग मोटी धोती और पगड़ी पहनते हैं। ये लोग गहनों के शौकीन होते हैं। आभूषणों में मुख्य रूप से साकमा एवं काकना प्रसिद्ध है जिसका अधिक प्रयोग किया जाता है। उच्च परिवार की स्त्रियाँ नाक एवं कान में सोने का आभुषण पहनती हैं। गोदने गोदवाती हैं। फूलों की शौकीन होती हैं। पुरूष भी बालों को संवारते हैं।

परिवार और विवाह – इस जनजाति में विवाह तब होता है जब लड़के–लड़कियाँ परिवारिक कामकाजों में पारंगत हो जाते हैं। अपनी पैत्रिक किली (Tribe) में विवाह निषेद्य है। विवाह की बात चिरिओरिकी नामक शकुन के द्वारा तय होती है। अच्छे बुरे शगुनों को बहुत महत्व दिया जाता है। विवाह साधारणतः माता–पिता द्वारा ही तय किया जाता है। इस जनजाति में सामान्यतः एक विवाह प्रथा का ही प्रचलन है। विवाह में कन्यापन का प्रचलन है इनमें तिलक–दहेज का प्रचलन नहीं है।

आर्थिक स्थिति – अति आदिमता की स्थिति में ये लोग अरण्यजीवि थे। कन्द–फल–मूल, पशु–पक्षियों का शिकार ही इनकी मुख्य जीविका थी कालान्तर में कृषि इनका मुख्य पेशा है। पैतृक सम्पत्ति का विभाजन पिता की मृत्यु के बाद उनके बेटों में कर दिया जाता है। स्त्रियों को सम्पत्ति का उत्तराधिकार नहीं मिलता है। स्त्री तथा पुरूष शिक्षित होने की स्थिति में सरकारी नौकरी भी करते हैं।

धर्म– इस जनजाति के लोग दुःख तथा बीमारी या अकाल के समय विभिन्न देवताओं की पूजा करके उन्हें प्रसन्न करते हैं। ये देवताओं के अतिरिक्त परमेश्वर "सिंग–बोंगा" में विश्वास करते हैं। सारना इनका पवित्र मंदिर है। जिसमें इनकी देवी देवताओं का वास होता है।

गाँव के किसी पुराने वृक्ष के नीचे आखड़ा होता है। आखड़ा में जादू टोने किये जाते हैं एवं दोषी व्यक्तियों को सजा दी जाती है। मुण्डा जनजाति प्रकृति पूजक होते हैं। इन लोगों में पुरखों की पुजा अर्चना का प्रचलन है।

त्यौहार – मुण्डा जनजाति के लोग विभिन्न त्यौहार मानते हैं। माघे परब में मुख्यतः पुरखों की मृत आत्माओं की पूजा की जाती है। ये लोग मुख्यतः फागो त्यौहार, बाहा–परब, होन–बा–परब, बतुली, करम, दासाई, कोमल सिंग–बोंगा, जोम नावा ईद परब, सोहराई आदि त्यौहार मनाते हैं।

नुत्य व गीत – मुण्डा जनजाति में नृत्य–गीतों का विशेष महत्व है। इनके माध्यम से धार्मिक त्यौहारों के अवसर पर आराध्य देवताओं को प्रसन्न करते हैं। इसके माध्यम से सामाजिक उल्लास भी प्रकट किया जाता है। विभिन्न अवसरों पर वे प्रेम–भाव प्रकट करने वाले गाने गाते हैं। नाच और गाने के समय वाद्य यन्त्रों का व्यवहार होता है। मधुरता के लिए बांसुरी वादन भी किया जाता है। इनके गीतों में प्रेम, अनुराग एवं स्नेह का भाव बिखरता है। नृत्य–गीत गावों के अखाड़े में अनुष्ठित होता है। इन मौकों स्त्री–पुरूष सभी सम्मिलित होते हैं।

सांथाल जनजाति

संथाल जनजाति झारखण्ड राज्य के विभिन्न स्थानों में निवास करते हैं किन्तु इनका मुख्य निवास स्थान सांथाल परगना क्षेत्र है। श्री सदरलैंड के अनुसार सांथाल लोग संत (Sant) देश से आये थे। बाद में मिदनापुर के सांओत क्षेत्र में रहने लगे। सांओत क्षेत्र के निवासी के कारण ये लोग सांओन्तर कहे जाने लगे। कालान्तर में सांउतार क्रमशः साउताल अधुना सांथाल कहे जाते हैं। इतिहासकारों के अनुसार मिदनापुर के सांओत क्षेत्र से बीरभूम होते हुए ये लोग हंडवे तथा बेलपट्टा में निवास करने लगे। सांउतालों के निवास कारण इस क्षेत्र का नाम साउताल परगना हो गया। वर्तमान में इस क्षेत्र को संथाल परगना कहते हैं। इनका एक भाग वर्तमान उड़िसा राज्य में मयुरगंज क्योंझर की ओर चले गए तथा बस गए।

चुंकि उस समय स्थायी निवास की व्यवस्था नहीं रहने के कारण तथा प्रतिगत वन्य सम्पदा से जीवन यापन करने के कारण यत्र–तत्र घुमते रहते थे। इस तरह झारखण्ड के अलावे बिहार पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, आसाम इत्यादि जगहों पर निवास करने लगे।

बी0 एस0 गुहा (B.S. Guha) के अनुसार यह जनजाति प्रोटो ऑस्ट्रोलायड संतति से संबंध रखती है। हब्सी लोगों के थोड़े ही दिनों के बाद ये लोग हिन्दूस्थान में आये। सांथाल साधारणतः नाटे हुआ करते हैं। इनकी नाक चौड़ी एवं चिपटी हुआ करती है। यो लोग बड़े उद्योगी एवं परिश्रमी हुआ करते हैं।

सांथाल कबिला की कबिलावाची भाषा सांथाली है। इसका सम्बंध अस्ट्रोएशियाई भाषा से है। यद्यपि इनकी बोली झारखण्ड के अन्यान्य आदिवासी भाषाओं से मिलती–जुलती है।

वेशभूषा :– सांथाल जनजाति के परम्परागत पोशाक पुनकी, काचा, पारहाँट, दहड़ी पाटका आदि रही है। आधुनिक पोशाकों के प्रचलन से ये विस्थापित हो चले हैं। सांथाल पुरूष धोती कुर्ता, आधुनिक पेंट शर्ट पहनते हैं तथा महिलाएं साड़ी, पेटीकोट तथा ब्लाउज के अलावा ब्रेसियर भी पहनने लगी हैं। सांथाली महिलाएं अपने जुड़े को एक विशेष ढंग से गोलाकार बांधती हैं। हाथ–पैर तथा गले में गोदना चिन्ह लेती हैं। सांथाल युवतियाँ शंख, कांसा, पितल तथा चाँदी के गहने पहनती हैं। गले में हंसली, हाथों में शंख निर्मित शांखा, कांसे, पीतल या चाँदी के बने साकोम बांह में खागा, कानों में सोने या चांदी निर्मित पागरा, पांवों में कांसे द्वारा निर्मित बाक–बंकी, पैरों की उंगलियों में बटरिया तथा झुंटिया इनके सामान्य आभूषण हैं। युवकों के आभूषण–हाथों में चाँदी के टीडीर के अलावे फूल तथा पत्तियों से अपने शरीर को सजाया करते हैं।

निवास स्थान – संथाल जनजाति के लोग स्वच्छ और उन्मुक्त वातावरण में बसवास करना पसन्द करते हैं। ये गिजील पसन्द नहीं करते है। ये गाँव या टोले में निवास करते हैं। इनके गांवों की लम्बाई पूरब और पश्चिम की दिशा में होती है।

गली या कुल्ही इतनी चौड़ी होती है कि दो बैंलगाड़ियाँ बे रोकटोक चल सकती हैं। साधारतः मिट्टी की दीवार, फुस तथा खपड़े के छादन होते हैं। घर बहुत ही साफ सुथरा होता है। लाल मिट्टी, काली मिट्टी तथा चारकोल द्वारा दीवार को सजाया जाता है। प्रति वास्तु में तीन–चार कोठरियों का अन्ततः दो कमरे का एक बड़ा घर होता है। इसके अलावा छोटी कोठरी वाला अलग घर होता है। सम्पन्न परिवार के लोग काठ–बांस का कोठा बनाते हैं आजकल इंट के पक्का मकान भी बनाते हैं।

आर्थिक अवस्था :– इनकी आर्थिक अवस्था अति दयनीय है। साधारणतः ये लोग मामुली भोजन कर जीविका निर्वाह करते हैं। इनका मुख्य भोजन चावल का माड़भात सागपात है। सम्पन्न परिवार के लोग चावल दाल सब्जियाँ आदि भोजन करते हैं। पशु पक्षियों का मांस भी खाते हैं। मांस के लिए घर में भेड़, बकरी, सुअर, मुर्गी आदि पालते हैं। ये जंगली पशु–पक्षियों का शिकार करते हैं। मुसा (चुहा) का भी शिकार करते हैं। ये दूसरों की जमीन में दैहिक परिश्रम कर गुजर बसर करते हैं। इनकी अपनी भी थोड़ी बहुत जमीन होती है तो कुछ सम्पन्न परिवार भी हैं। आधुनिक परिवेश में ये सरकारी–नौकरी में भी बहाल हो चले हैं। फिर भी इनकी आर्थिक स्थिति इतनी दयनीय है कि मजबुर होकर महाजनों से ऋण लेना पड़ता हैं और सूद के रूपये बहुत जल्द असल या मूल से भी ज्यादा हो जाता है। परिणामस्वरूप इनकी जमीन धीरे–धीरे उन महाजनों के पास चली जाती है और लोग भूमिहीन हो जाते हैं। दिन बीतने के साथ इनकी आर्थिक अवस्था बिगड़ती जा रही है।

सामाजिक जीवन :– संथाल जनजाति की 90.00 प्रतिशत से अधिक आबादी गांवों में निवास करती है। इनके परिवार का स्वरूप पितृसत्तात्मक है। पैतृक सम्पत्ति पर पहला अधिकार पुत्रों का फिर अविवाहित पुत्रियों का, तब पट्टीदारों का होता है। क्योंकि ये प्रथायित विधि द्वारा परिचालित होते हैं पिता ही परिवार का मुखिया होते हैं। सांथाल महिलाएं काफी सरल तथा परिश्रमी होती हैं।

बच्चों का लालन–पालन, भोजन बनाना कृषि तथा अन्य उद्योग तथा व्यवसायिक कार्यों का सम्पादन में सांथाल महिलाओं की अहम भूमिका होती है। हाटों में खरीद बिक्री में सांथाल महिलाएं प्रवीण होती हैं। सांथाल महिलाएं शिकार, पूजा अर्चना तथा पंचायतों की बैठक में भाग नहीं ले सकती। इसी तरह पेंड़ चढ़ने, हल जोतने एवं छप्पर छादन करने में पाबन्दी होती है। अविवाहित कन्या पिता की सम्पत्ति मानी जाती है। विवाह के समय सांथाल जाति में कन्या पोन यानि वधु मूल्य चुकाना पड़ता है। विवाह के बाद वह अपने पति की सम्पत्ति मानी जाती है। बुजुर्ग महिलाओं या पुरूषों को समाज में आदर प्रदान किया जाता है।

जन्म संस्कार :– गर्भावस्था में गर्भवती महिला पर सावधानी बरती जाती है। प्रसव के पहले नवम माह की गर्भावस्था में स्वाद भक्षण कराया जाता है। प्रसव के समय घर या पड़ोस की बुजुर्ग महिलाएं दाई का काम करती हैं। जन्मजात शिशुका नाल तीर के नुकिले धार से काटे जाने की प्रथा है। जन्म के बाद पांस बुढ़ी एवं छठियारी मनायी जाती है। अपनी गोष्ठी के लोग जाता छुइत मानते हैं। छठियारी के दिन पड़ोसीयों के साथ हल्दी तेल लगाते हैं नहान–कमान करते हैं। इस अवसर पर नीम की पत्तियों के साथ खिचड़ी या माड़ी लोगों के समक्ष खाने के लिए परोसी जाती है जिसे नवजात शिशु की और से उपहार माना जाता है। इस अवसर पर लड़का होने पर दाई को एक साड़ी, एक मन धान एवं कंगन तथा लड़की होने पर एक साड़ी आधा मन धान तथा कंगन देने की प्रथा रही है।

विवाह संस्कार :– विवाह परिवार की आधारशिला होती है। जिसके आधार पर समाज की निरंतरता कायम रहती है। विवाह के द्वारा यौन एवं आर्थिक उत्तरदायित्व के निर्वाहन का अधिकार प्रदान करता है। सांथाल जनजाति अर्न्तविवाही जनजाति है जिसके बीच समगोष्ठीय विवाह निषिद्ध है। सांथाल जनजाति के बीच एक विवाह की प्रथा प्रचलित है। इनके बीच बाल विवाह का प्रचलन नहीं है।

साली तथा देवर के बीच विवाह सामाजिक रूप से मान्य है। विधवा विवाह का भी इनके बीच प्रचलन है। विवाह के समय बर पोन–तिलक नहीं वधु मूल्य या वधू पोन लड़के के माता पिता अपनी ओर से कन्या या बधु के माता–पिता को चुकाते हैं। बांझपन, चरित्रहीनता, स्वामी के घर में रहने की अनिच्छा के आधार पर तलाक भी दिया जाता है। तलाक होने पर वधू मूल्य लौटा दिया जाता है। ईसाई धर्म के प्रचार, औद्योगीकरण तथा शहरीकरण के फल–स्वरूप इनके बीच इन दिनों बहिर्विवाह, अर्न्तजातीय विवाह तथा गैर जनजातीय विवाह का छिट–फुट उदाहरण देखने को मिलता है।

बापला (विवाह)

संथाल जनजाति में निम्नलिखित विवाह (बापला) देखने को मिलता है :–

सादाई बापला :– इस प्रकार के विवाह वर–वधू तथा उनके माता–पिता कुटुम्ब परिजनों की पसन्द के आधार पर ही सुनिशचित होते हैं। विवाह के पहले घर देखी, टाका चाल की रस्में पूरी की जाती है। टाका चाल में वधू के लिए वर के परिवार की ओर से वधू के पिता को वधू मूल्य दिया जाता है जो प्रायः बारह रूपये होता है। विवाह के पूर्व एक, तीन या पाँच दिन का लगन बांधा जाता है। एक दिन पहले मण्डल (माडुआ) छादन किया जाता है। निश्चित तिथि को बाजा–गाजा के साथ बर एवं बारात वधू के घर जाते हैं। सिंदुरदान विवाह का प्रमुख संस्कार होता है। वधू को हल्दी से रंगे नये कपड़े में एक टोकरी में बैठाकर मण्डप में लाया जाता है। इसी अवस्था में वर वधू का घूंघट हटाकर मांग में तीन या पांच टीका सिंदुर दान करता है। सिंदूर दान के दूसरे दिन वधू की विदाई होती है। उसके साथ उसका भाई, उसकी सहेलियाँ भी जाती हैं। विवाह के छठे दिन वधू अपने भाई, सहेलियाँ तथा पति के साथ नैहर वापस आती है। दो दिनों के बाद नव दम्पति अपने घर लौट जाते हैं। तब दाम्पत्य का जीवन–निर्वाह प्रारम्भ करते हैं।

2. गोलाईटी बापला :– इस प्रकार के विवाह में जिस परिवार की बेटी ब्याही जाती है, उसी परिवार से पतोहु लायी जाती है। इस प्रकार के विवाह में भी पोन नहीं लिया जाता है। वधू मूल्य से बचने के लिए दो परिवार के लड़के–लड़कियों का बिना पोन दिये विवाह कर दिया जाता है।

3. टुनकी टिपिल बापला :– इस प्रकार के विवाह प्रायः गरीब लोगों के बीच सम्पन्न किये जाते हैं। कन्या को वर के घर लाकर सिंदूर देकर शादी रचा दी जाती है।

4. घरदी जाबांय बापला :– इस प्रकार के विवाह में पुत्रहीन व्यक्ति वर के गांव जाकर उसे ले आता है वधू के लिए पोन नहीं देना पड़ता है तथा शादी के बाद वर को ससुराल में ही रहना पड़ता है।

5. सांघा बापला :– इस प्रकार के विवाह में विधवा या तलाक शुदा स्त्री का विवाह विधुर या तलाक दिये व्यक्ति के साथ सम्पन्न होता है। वर–वधू स्वयं ही अपना विवाह निश्चित करते हैं। कुछ कन्या मूल्य भी दिये जाते हैं। किसी निश्चित तिथि को सांघा कर वधू को वर अपने घर ले जाता है।

6. अपगिर बापला :– लड़के लड़की में जब प्रेम हो जाता है तो पंचायत द्वारा उनके माता–पिता को विवाह सम्पन्न करने के लिए कहा जाता है। यदि वे शादी के लिए तैयार हो जाते हैं तो दोनों गांव के माझी एवं पंचायत के सदस्यों के सामने सिंदूर लगाकर शादी सम्पन्न की जाती है। इस अवसर पर लड़के के पिता द्वारा गांव वालों को भोज देना पड़ता है।

7. इतुत बापला :– जब लड़की के माता–पिता उसके पसन्द के लड़के के साथ विवाह की स्वीकृति प्रदान नहीं करते हैं तब लड़का मेले या किसी अन्य अवसर पर लड़की के माथे पर सिंदूर लगा देता है। लड़की के माता–पिता को जब इस बात की सूचना मिलती है तो वे लड़के के गांव जाते हैं तथा कन्या मूल्य प्राप्त कर लेने पर विवाह सम्पन्न करा दिया जाता है।

8. निर्वोलक बापला :– इस प्रकार के विवाह में लड़की अपने पसंद के लड़के के घर रहने लगती है। लड़का या उसके परिवार के सदस्य बल प्रयोग कर लड़की को अपना घर से बाहर निकालने की चेष्टा करते हैं। फिर भी यदि लड़की घर में ही बैठी रहती है तो उसकी सूचना जोगमांझी को दी जाती है जो उनका विवाह सम्पन्न करा देता है।

9. बाहादूर बापला :– इस प्रकार के विवाह में लड़का–लड़की घर से भाग जाते हैं तथा एक दूसरों को माला पहना देते हैं और पुनः घर लौटकर खुद को एक कमरे में बंद कर लेते हैं। उसके बाद उनका विवाह सम्पन्न माना जाता है।

10. राजा राजी बापला :– इस प्रकार के विवाह में लड़का लड़की गांव के माझी के पास जाते हं। मांझी उन्हें लड़की के घर ले जाता तथा गांव के वयोवृद्धों के समक्ष वह औपचारिक रूप से दुल्हन की सहमति प्राप्त कर लेता है। लड़का–लड़की के माथे पर सिंदूर देता है। इस प्रकार विवाह सम्पन्न हो जाता है।

11. कोरिंग जावांय बापला :– जब लड़की दूसरे पुरूष से गुप्त रूप से गर्भवती हो जाती है तो इस लड़की से शादी के लिये इच्छुक व्यक्ति को धनराशि देकर शादी कर दी जाती है। वधू के माता–पिता द्वारा उसे वैवाहिक जीवन प्रारम्भ करने के लिए कुछ धनराशि दी जाती है।

मृत्यु संस्कार

संथाल जनाजाति में मरणोपरांत शव संस्कार, अस्थि प्रवाह तथा श्राद्ध की रस्में पूरी की जाती है। शव संस्कार प्रायः शव को जलाकर या दफना कर करने की प्रथा है। मृतक के निजी उपयोग में लाये जानेवाली वस्तुएं जैसे बर्तन, तीर धनुष, लाठी, बांस, यंत्र, कपड़े इत्यादि शव को सौंप दी जाती है। सांथालों में यह विश्वास है कि मृत व्यक्ति की आत्मा दूसरी दुनियां में चली जाती है। वहाँ उसे इस दुनियाँ की वस्तुओं की आवश्यकता पड़ेगी।

एक मुर्गा का बच्चा, हल्दी, छप्पर का थोड़ा पुआल, बिनौले के लावा के साथ मुर्दे को कफन में ढंक कर अंतिम संस्कार के लिए ले जाया जाता है। शव को चिता में रखने के बाद चिता की खुंटी में मुर्गी के बच्चे की बलि चढ़ाई जाती है। मृतक का प्रथम उत्तराधिकारी उसके मुंह में आग देता है। मुखाग्नि देने का अधिकार मृतक के पुत्र, पौत्र, पिता, भांजा, भतीजा और चाचा को है। महिलाएं मुखाग्नि नहीं दे सकतीं। मुखाग्नि देने के बाद मृतक को पट्टीदारों में सभी एक एक लकड़ी या एक मुटठी मिट्टी चिता या कब्र पर डालते हैं। फिर चिता को प्रज्जवलित कर दिया जाता है या कब्र को भर दिया जाता है। शवदाह के बाद राख को जल में बहा दिया जाता है। सभी लोग स्नान कर अपने अपने घर प्रस्थान करते हैं। कामान घाट के दिन पुत्र बाल मुंड़वाते हैं। इस अवसर पर एक मुर्गी की बली दी जाती है तथा बिना नमक की खिचड़ी बनायी जाती है। माराबुरू, पूर्व पुरूष और मृतात्मा के नाम से खिचड़ी चढ़ाई जाती है। भाण्डान या श्राद्ध भोज के दिन तक परिवार और गांव में अशुद्धता मानी जाती है। इस बीच परिवार के सदस्य किसी समाजिक या धार्मिक समारोह में हिस्सा नहीं लेते, वे न तो सिंदुर का प्रयोग करते हैं न किसी देवता की पूजार्चना हीकरते हैं। भाण्डान या श्राद्ध के अवसर पर बकरे की बलि दी जाती है। भाण्डान का भोज सांथाल समाज द्वारा अशुद्धता से मृतक के परिवार वालों की मुक्ति की स्वीति मानी जाती है।

सांथाली धर्म

संथाल जनजाति अनेकों देवी देवताओं तथा प्रेतात्माओं पर विश्वास करते हैं। ये देवी–देवता इनके पर्व त्यौहार के साथ जुड़े हुए हैं। इनका मानना है कि किसी व्यक्ति, परिवार या गांव की कुशलता उनके बोंगागुरू, हापड़ामको, पितरों तथा देवी–देवताओं पर ही निर्भर करता है। उनका विश्वास है कि अकाल, महामारी इत्यादि उन्हीं के क्रोध का प्रतिफल है।

अतः उन्हें प्रसन्न रखने के लिए उनकी आराधना करना, बलि, हंड़िया या जुड़ी चढ़ाना आवश्यक माना जाता है। संथालों का सबसे बड़ा देवता सिंगबोगा (सूर्य) है। सिंगबोगा के बाद मारांगबुरू उनका दुसरा सबसे बड़ा देवता है। इस जनजाति के अन्य बोगा – हापड़मको, गोसाईएरा, मोड़ेको, तुईको, जाहेरएरा, मांझी हाड़मा बोगाा ओड़ाक बोगा, अबगे बोगा इत्यादि हैं। मांझी हड़ाम बोगा का निवास स्थान मांझीथान कहलाता है। ओड़ाक बोगा (गृह देवता) अवगे बोगा (परिवार का देवता) तथा पूर्वज बोगा का निवास घर के अन्दर होता है। प्रत्येक सांथाल गांव के बीच एक चोकोर चबुतरा होता है। जिसे मांझीथान कहा जाता है। गांव की पंचायत प्रायः मांझीथान में ही बैठा करती है। जाहेर थान गांव से थोड़ा हटकर शाल तथा महुआ के उपवन में अवस्थित होता है। इसी जाहेरथान में देवी–देवताएं निवास करते हैं। सांथाल जनजाति प्रति पूजक हैं मुर्तिपूजक नहीं। मांझीथान तथा जाहेरथान में साधारणतः सांथाल महिलाएं प्रवेश नहीं किया करती हैं। ये भूत–जादू–टोने में भी विश्वास रखते हैं। सांथाल जनजाति औझा डाईन में विश्वास रखती है।

पर्व–त्यौहार

सांथाल जनजाति के जीवन में पर्व–त्यौहारों का विशेष महत्व है। सभी त्यौहार सामुहिक रूप से मनाये जाने की परम्परा है। पहान या नायके गांव के सभी लोगों की और से व्रत रखते हैं तथा पूजा–अर्चना करते हैं। उत्सव के सिलसिले में आयोजित नाच–गान में सभी सांथाल पुरूष–महिलाएं समान रूप से अंश ग्रहण करते है। एरोक, हरियाड़, जापाड़, सोहराय, सांकरात, बाहा इत्यादि इनके प्रमुख पर्व हैं।

एश्रोक पर्व :– इस पर्व में खेतों में भली–भांति बीज के उगने के लिए प्रार्थना की जाती है। इस अवसर पर जाहेर थान में देवी–देवताओं को मुर्गी आदि की बलि दी जाती है। यह पर्व आषाढ़ मास में मनाया जाता है। इस पर्व के अवसर पर लोगों के बीच खिचड़ी का प्रसाद वितरित किया जाता है।

हरियाड़ पर्व :– फसल में हरियाली आ जाने पर यह पर्व मनाया जाता है। इस व्रत या पर्व में अच्छी फसल के लिए प्रार्थना की जाती है। हरियाड़ पर्व विशेष कर सावन माह में मनाया जाता है।

जापाड़ पर्व :– इस अवसर पर 'जाहेरथान' में बलि चढ़ायी जाती है। खेतों तथा खलिहानों में फसलों की साहाईर के लिए प्रार्थना की जाती है। यह पर्व खासकर फसल खलिहान में लाने के पूर्व में की जाती है। खलिहान में भी जादू–टोना की जाती है।

सोहराय पर्व :– यह सांथाल जनजाति का सबसे बड़ा त्यौहार है। इसे वे बांदना भी कहते हैं। इस अवसर पर धान की नयी फसल घर में आने के उपलक्ष्य में देवी देवताओं पितरों, गौधनों की पूजा अर्चना की जाती है। सगे सम्बंधियों का सम्मान किया जाता है। बड़े–बुढ़े, नायके या पाहान के साथ "जाहेरा एरा" तथा गौधनों का अह्वान करते हैं। मुर्गे की बलि तथा हड़िया अर्पन किया जाता है। कोई बीमारी तथा कलह न होने की मन्नत मांगी जाती है। इस अवसर पर गांव के मांझी द्वारा सोहराय पर्व मनाने का सबकी सहमति प्राप्त कर ली जाती है। गांव के युवक–युवतियों को जोग मांझी के नेतृत्व में नाचने गाने तथा हंसने–बोलने की स्वतंत्रता प्रदान की जाती है। रात्रि में सांथाल युवक–युवतियों का दल गांव के प्रत्येक गृहस्थ के यहाँ गो–पूजा के लिए जाते हैं। इस पर्व में गोहाल (गाय बैलों के रहने का स्थान) साफ सुथरा कर सजाया जाता है। गाय–बैलों के पैर धोये जाते हैं तथा उनके सींगों पर तेल–सिंदुर लगाया जाता है। पितरों तथा देवी देवताओं को मुर्गे एवं सुअर की बलि दी जाती है तथा हड़िया चढ़ाया जाता है। अगले दिन गांव के मांझी से लेकर साधारण गृहस्थ तक अपने अपने बैलों तथा भैंसों को धान की बालियों की माला एवं फूल मालाएं इत्यादि से सजाकर खुंटते है तथा वाध्य–यंत्रों के साथ उसे भिड़काते हैं। घंटे दो घंटे तक नाचते कुदते हैं। फिर बैल और भैंसों को गोहाल घर ले जाते हैं। अगले दिन युवक युवतियाँ प्रत्येक गृहस्थ के यहां नाच गाकर थोड़ा सा चावल, दाल, नमक तथा मसाले एकत्रित करते हैं। अगले दिन जोग मांझी के निगरानी में इन

एकत्रित चीजों से खिंचड़ी तैयार कर सहभोज का आयोजन किया जाता है। इस अवसर पर हड़िया भी ढाली जाती है तथा युवक युवतियों के हंसने गाने की स्वतंत्रता वापस ले ली जाती है। इस तरह से इस पर्व का समापन हो जाता है।

सांकरात पर्व :– पुस माह के अंतिम दिनों में सांकरात का पर्व मनाया जाता है। इस अवसर पर मछलियाँ केंकड़ों तथा चूहों को एकत्रित किया जाता है। जंगलों में पशु पक्षियों का शिकार किया जाता है। उनके मांस का भोग चपड़ा तथा पकावन तैयार किया जाता है। हंड़िया के साथ मांरागुबुरू, पितरों को भोग चढाया जाता है तथा परिवार के लिए उनसे प्रार्थना की जाती है।

भागसिम :– इस अवसर पर किसी तालाब के किनारे देवी देवताओं को मुर्गी की बलि दी जाती है। यह पर्व माघ माह में मनाया जाता है। इस अवसर पर गांव के ओहदेदारों को अपने अपने ओहदे की स्वीति प्रदान की जाती है। किन्तु यह रिवाज अब खत्म होती जा रही है।

बाहा पर्व :– यह संथाल जनजाति का दूसरा सबसे बड़ा पर्व है। शाल वृक्ष पर फुल आते ही इस पर्व को फाल्गुन माह में मनाया जाता है। यह पर्व मुण्डा – उरांव – कुड़मियों के सरहुल पर्व के समान है। यह पर्व सांथालों का वसन्तोत्सव है। यह पर्व तीन दिनों का होता है। प्रथम दिन स्नान करके भोजन कर पवित्रता के साथ संयम पालन किया जाता है। दूसरे दिन जाहेरथान की देवी–देवताओं की पूजा अर्चना की जाती है। इस अवसर पर हड़िया महुआ तथा शाल फुलों की भेंट एवं मुर्गी बलि दी जाती है। खिचड़ी पकायी जाती है तथा प्रसाद वितरित किया जाता है। गांव की कुशलता के लिए देवी–देवताओं से प्रार्थना की जाती है। इस अवसर पर नाच गानों का भी आयोजन किया जाता है। पर्व के तीसरे दिन पाहान या नायके गांव के प्रत्येक गृहस्थ के दरवाजे जाते हैं और वहाँ पाहान के पांव धोए जाते हैं। बदले में पाहान प्रत्येक गृहस्थ को शाल की मंजरियों का गुच्छा प्रसाद के रूप में प्रदान करते हैं। शुद्ध जल की होली खेली जाती है। इस तरह

पानी की बौछार डालकर एक–दूसरे के साथ प्रेम का भाव प्रकट करते हैं।

मूल रूप से सांथाल जनजाति के पर्व–त्यौहार प्रति, कृषि तथा अलौकिक शक्तियों से सम्बंधित हैं।

राजनैतिक जीवन

सांथाल जनजाति के परम्परागत राजनैतिक संगठन का अपना एक विशिष्ठ स्वरूप रहा है। प्रत्येक सांथाल गाँव में एक पंचायत होती है जिसमें मांझी, परामानिक, जोगमांझी, जोग परामानिक तथा गोड़ेइत होते हैं। सांथाल जनजाति में राजनैतिक संगठन इसी गांव पंचायत से प्रारम्भ होता है जिसका प्रधान मांझी कहलाता है। मांझी की अनुपस्थिति में ग्राम परिषद की अध्यक्षता परामानिक करता है। परामानिक का सहायक जोग परामानिक कहलाता है। मांझी का कार्य विवाह संबंध स्थापित करने के लिए अनुमति देना तथा ग्राम पंचायत के द्वारा गांव के निवासियों के झगड़ों का निपटारा करना है। जोगमांझी का प्रमुख कार्य अपनी जनजाति के लोगों के आचरण का ध्यान रखना एवं विवाह सम्बंधी समस्याओं को सुलझाना है। जन्म एवं विवाह के अवसर पर जोगमांझी के सलाह से ही कार्य सम्पन्न किये जाते हैं।

गांव के पुजारी पाहान या नायके कहलाता है। धार्मिक अनुष्ठान तथा समारोह के सम्पादन के लिए उत्तरदायी होता है। नायके का सहायक कुदम नायके कहलाता है। वह जंगल तथा पहाड़ियों के भूतों की पूजार्चना तथा प्रसादित करता है।

गांव का संवाद वाहक गोड़ाइत कहलाता है। उसका कार्य मांझी तथा परामानिक का आदेश पालन करना, बैठक तथा उत्सव आदि के अवसर पर ग्रामवासियों को एकत्रित करना है।

परम्परागत ग्राम पंचायत के उक्त सभी पदाधिकारी जनजाति व्यवस्था के अनुसार अपने कार्यों को सम्पादित करते हैं। सांथाल के ग्राम सरकार का स्वरूप लोकतांत्रिक होता है। गांव के परिवार विभाजन,

सम्पत्ति का बंटावारा, विवाह, विवाद, तलाक, अत्याचार, बलात्कार, कन्या अपहरण जमीन विवाद, निषिद्ध यौन संबंध, भूत या डायन का विवाद, पालतु पशुओं से फलों तथा शस्यों की रक्षा आदि सम्बंधी विवाद परम्परागत ग्राम पंचायत में रखे जाते हैं। जिसका फैसला मांझी के नेतृत्व में ग्राम परिषद सभा द्वारा किया जाता है। ग्राम पंचायत के सभी पदाधिकारीयों का चुनाव प्रथागत रूप से गांव की स्थापना के समय किया गया था। बाद में सभी पद वंशानुगत रूप से पिता के बड़े पुत्र को प्राप्त होने लगे, किसी पदाधिकारी के अयोग्य तथा स्वार्थी हो जाने पर गांव के किसी दुसरे योग्य व्यक्ति को उसके स्थान पर चुना जाता है। पहले मांझी, जोग मांझी, पाहान तथा नायके को लगान मुक्त जमीन दी जाती थी।

प्रायः दस बारह सांथाल गांवों को मिलकार एक परगना होता है। परगना के प्रधान का चुनाव गांव पंचायतों के मांझियों में से ही किया जाता है जिसे परगनैत कहा जाता है। परगना में शामिल सभी गांवों के मांझी परगनैत परिषद के सदस्य होते हैं। परगनैत अपने क्षेत्र के सभी गावों के सामाजिक कार्यों का अभिरक्षक होता है। बिटलाहा जैसी सामाजिक बहिष्कार की प्रक्रिया को सुनिश्चित करने में परगनैत की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

सांथाल जनजाति में सेन्दरा बाइसी की भी परम्परा रही है जिसके प्रधान को "दिहरी" कहा जाता है। सेन्दरा बाइसी को साथालों का उच्च न्यायालय भी माना जाता है। जिसके अन्तर्गत मांझियों तथा परगनैतों के फैसलों की अपील की जाती थी। बैठक वर्ष में एक बार शिकार के समय आयोजित की जाती थी।

मुसलमान तथा अंग्रेजी शासन के दौरान, जमीनदारी प्रथा के कारण सांथालों के राजनैतिक संगठन पर प्रतिकुल प्रभाव पड़ा। अंग्रेज शासकों ने मांझी को वृत्ति देकर अंग्रेजी सरकार का वफादार बना लिया।

परगनैत के कार्य क्षेत्रों में अंग्रेजी शासक दखलअंदाजी करने लगे। बिटलाहा के अवसर पर कानून व्यवस्था बनाये रखने के लिए दण्डाधिकारी प्रतिनियुक्त किए जाने लगे।

ईसाई मिशनरियों के द्वारा ईसाई धर्म के प्रचार के कारण भी सांथाल जनजाति के परम्परागत राजनैतिक संगठन के विघटन को बल मिला।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद पंचायती राज्य व्यवस्था लागू किए जाने के कारण सांथाल के गावों में वैधानिक पंचायतों की स्थापना की गई जिसके तहत बहुमत के अधार पर मुखिया तथा सरपंच का चुनाव किया जाने लगा। इसके फलस्वरूप भी सांथाल जनजाति की परम्परागत राजनैतिक संगठन में ह्रास होने लगा।

वैधानिक न्यायालयों की स्थापना के कारण सांथाल जनजाति के परम्परागत पंचायतों का स्वरूप कमजोर पड़ने लगा।

नवीन जनजातीय शक्ति संरचना में जनजाति बहुल क्षेत्रों में राजनैतिक दलों की भूमिका अधिक प्रभावशाली बनती जा रही है। प्रत्येक राजनैतिक दल सांथाल गांव की जनजातीय संरचना को ध्यान में रखते हुए अपनी राजनैतिक रणनीति का निर्धारण करने लगे हैं।

जनजाति बहुल झारखण्ड राज्य में झारखण्ड राज्य पंचायत अधिनियम 2000 में परम्परागत आदिवासी स्वशासन को ध्यान में रखकर ही श्रद्धेय दिलीप सिंह भूरिया के निर्देशनुसार गठित भूरिया कमिटि के द्वारा जनजातियों की परम्परागत पंचायत व्यवस्था को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। इस तरह के कुछ बाह्‌य परिवर्तनों के बावजूद आज भी आन्तरिक रूप से अपने परम्परागत स्वरूप को अक्षुण्ण बनाए हुए है।

जनजाति कुड़मी जनजीवन

झारखण्ड में जनजाति कुडमियों की संख्या अधिक है। यह जनजाति यहाँ की अति आदिम जनजातियों (Primitve Tribes) में से एक है। अनान्य मुख्य जनजाति या आदिम आदिवासियों में जनजाति कुड़मी भी है। इस जनजाति का आदिम निवास भूमि चिन्हित है। एथनिकस् या रेसीकल अथवा अपना झाड़खूंट में परम्परागत आदिमता की परिचिति अक्षुण्ण रही है। मुण्डा–सांथाल–उरांव (कुडुख) खेड़िया–हो जैसी ही इनकी कबिलावाची कुड़माली मातृभाषा रही है। इनका परम्परागत पर्व त्यौहार, रस्म, रीवाज में उज्जवल कुड़माली संस्कृति बरकरार है। अन्य जनजातियों की तरह ही कुड़मी जनजाति में भी दुनियां की उत्पत्ति तत्व सम्बंधी परम्परागत कुड़मी लोककथा प्रचलित है।

आदिम निवास भूमि :– वर्तमान अवस्था में पर्दापन के क्रम में जनजाति जनजीवन को कई स्तर के अतिक्रम करने पड़े हैं। पहले ही कहा जा चुका है फिर भी अत्युक्ति नहीं होगी कि वन्य स्तर में डुंगरी, पहाड़ी, दह, आड़खा, विधृत, सत, नाला, जोड़, जुड़िया, नदी विधौत, आम, जामुन, कटहल, कुसुम, पियार, नीम, करंज, भेलुआ आदि घने पेड़ों एवं तरह–तरह की झाड़ियों द्वारा आच्छादित, लतपरास कुजरी – बुड़ही लाइट घंग, चिहड़ – दुधि आदि लताओं द्वारा वेष्टित, उंची–नीची–कंकरिली–पथरीली–उबड– खाबड एवं सत् सथल सुविस्तिर्ण बिजुवन, अरूणवन एवं सटे बाधावन अति आदिम कुड़मी जनजाति का प्रागैतिहासिक अति प्राचीन परम्परागत निवास भूमि रही है। जिसे ऐतिहासिक सुप्राचीन गोण्डवाना मालभूमि का पूर्व प्रत्यन्त कहा जाता है। यह जनजाति बिजुवन–अरूणवन एवं बाधावनों में ही सीमित नहीं रही बल्कि बिजुवन के उत्तर सीमान्तवर्ती रणवन में भी आवश्यकतानुसार जनजाति कुड़मी की शाखा–प्रशाखा प्रवेश कर निवास करती आ रही है।

कालान्तर में स्थायी बसवास के कारण उक्त वनभूमि क्षेत्र शिख–शिखर–नागपुर –अठारहों परगना के नामों से आदिवासी स्वशासित चार देशों में परिचित हुए सुप्राचीन बिजुवन को प्राचीन शिखर एवं नागपुर देश कहा जाता था। कालान्तर में शिखरभूम वर्तमान मानभूम (परूलिया जिला एवं धनबाद जिला) गिरीडीह, हजारीबाग रांची का पूर्वांश पांच परगना क्षेत्र, पूर्वी सिंहभूम, पश्चिमी सिंहभूम जिलों को कहा जाता था। मानभुम यानि वर्तमान पुरूलिया जिला के पूर्वांश बांकुडा जिला का भिलाईडीहा, फुलकुसमा, राईपुर, सुपुर, अम्बिकानगर, सिमलापाल, कुईलापाल, छातना ये आठ परगना एवं आमवनी जामवनी बांसवनी–झांटीवनी शिलदा इत्यादि दस परगना यानि मिदनापुर जिला का झाड़ग्राम महकुमा को प्राचीन अरूणवन कहा जाता था। कालान्तर में जनजाति कुड़मी की शाखा–प्रशाखा वर्तमान मयुरभंज–क्योंझर जिलों की ओर प्रवेश करती गई, जिसे सुप्राचीन बाधावन एवं प्राचीन शिखरभूम कहा जाता था। वर्तमान गोड्डा–साहेवगंज जिला जो सांउताल परगना जिला था तथा सुप्राचीन रणवन नाम से जाना जाता था। जनजाति कुडमियों की प्राचीन निवास भूमि रही है।

इस क्षेत्र को प्राचीन काल में शुम्भदेश, राढ़भूमि, झारखण्ड क्षेत्र भी कहा गया है। मुगलकाल में मन्दारण अंग्रेजो के शासन काल में जंगलमहल छोटानागपुर–सांउताल परगना आदि नामों से अभिहित किया गया। वृहत झारखण्ड तथा वर्तमान में झारखण्ड राज्य के नाम से स्वीकृत है जो जनजाति कुड़मी का परम्परागत आदिम निवास भूमि है।

एथनिक्स :– अनान्य प्रमुख जनजातियों की जैसा जनजाति या आदिवासी कुड़मी भी एथनिक्स हैं। इनकी गोष्ठियाँ (Tribes), टोटेम विश्वास (Totem) तथा धार्मिक विधि निषेध (Taboo) इनसे संबंधित विस्तृत चर्चा पहले ही की जा चुकी है। इस तरह से मुण्डा सांथाल–कुडुख (उरांव) खेडिया–हो जनजातियों के जैसे ही जनजाति कुड़मी भी एथनिक्स है।

कबिलावाची मातृभाषा :– जनजातियों की जाति सूचक या जाति

(कबिला) के नाम पर अपनी अपनी भाषाएं होती हैं। पहले चर्चा की जा चुकी है कि मुण्डा जनजाति की भाषा मुण्डारी, सांथाल जनजाति की सांथाली, कुडुख (उरांव) जनजाति की भाषा कुडुख या उरांव, खडिया जनजाति की भाषा खड़िया एवं हो जनजाति की भाषा हो है। इसी तरह जनजाति कुड़मी की जाति सूचक नाम से कुड़माली भाषा है। भाषाविद्‌ों के अनुसार कुड़माली भाषा द्रविड भाषा परिवार की भाषा है। नृतात्विक–गवेषकों के अनुसार जनजाति कुड़मी द्रविड समूह की एक शाखा है।

कुड़माली संस्कृति :– कुड़मी जनजाति के अपने जन्म संस्कार, विवाह संस्कार, मृत्यु संस्कार, धर्म, पर्व–त्यौहार हैं। जिसकी विस्तृत चर्चा आगे की जायेगी।

लोक कथा :– पृथ्वी की उत्पत्ति, वनस्पति का सृजन, पशुपक्षियों की सृष्टि, मानव, जीवों की सृष्टि संबंधी कुड़मी जनजाति को परम्परागत कुड़मी लोक–कथा प्रचलित हैं। अनान्य जनजातियों की लोक कथा प्रसंग में विस्तृत चर्चा की जायेगी।

जन्म संस्कार :– कुड़मी जनजाति गर्भवती महिलाओं पर सतर्क नजर रखती है। उसकी सुविधा असुविधा खानपान का विशेष ध्यान रखा जाता है। परिवार में गर्भवती औरत रहने से किसी मृत्यु घर में नहीं जाने दिया जाता है। उसका स्वामी भी इस नियम का पालन करता है। किसी के दाह संस्कार या दफनाने हेतु–शमशान नहीं जाता है। किसी मृत्यु घर में अपने घर से अनाज या किसी द्रव्य नहीं दिया जाता है, घर से देना अशुभ मानते हैं। नवम महीने की गर्भावस्था के समय उस गर्भवती महिला को भोजन में सधोड़ी खिलायी जाती है। प्रसव के समय बुढ़ी–बुजुर्ग औरतें दाई का कार्य करती हैं। इनके अलावे जानकार दाई भी रहती है जिसे धाईमाञ कहा जाता है। प्रसव होते ही छप्पर पीटने (छाईन ढेड़हाने) की रिवाज है। लाठी से छप्पर को तीन बार पीटा जाता है, कांसे की थाली–बजायी जाती है। यह द्रविडीय संस्कृति का द्योतक है। तीर की धारी अथवा झिनुक (शिप) की अति पतली धार

से नाल छेदन किया जाता है। प्रसव के तीसरे दिन प्रसविनी माँ को कुरथी सिद्ध का पानी पिलाया जाता है। पंचम दिवस में पांस बुढ़ी निकाली जाती है। छठे दिवस में छठी अथवा नवम दिवस में नारता अनुष्ठान गांव के महतो या मांझी की देखरेख या निगरानी में अनुष्ठित होता है। छठी या नारता के दिन प्रसुत सन्तान को मांस/मछली छुआने का नेग पालन किया जाता है। प्रसव दिवस से छठी या नारता तक अपनी गोष्ठी (Tribe) में जांता छुइत पालन किया जाता है। संबंधित गोष्ठी में पुजा–अर्चना निषिद्य माना जाता है। इस अवसर पर गांव भर में भी किसी तरह का सामुहिक पूजा अर्चना निषिद्य रहता है अथवा अशुभ माना जाता है। जन्म के बारह दिवस में प्रसुत सन्तान का मुण्डन किया जाता है। जन्म के बारह दिवस में प्रसुत सन्तान को डाभना दिया जाता है। जन्म के बारहवें दिन बुढ़े बजुर्ग लोग सन्तान का नामकरण करते हैं। पुत्र सन्तान जन्म लेने से दाई को एक साड़ी एक मन धान एवं नाई को भी एक धोती एक मन धान दिया जाता है। कन्या सन्तान होने से दाई को एक साड़ी आधा मन धान एवं नाई को एक धोती, आधा मन धान दिया जाता है।

वेशभूषा :– जनजाति कुड़मी मंझौले एवं नाटे कद के होते हैं। इनका नाक मोटा, चौड़ा, होंठ मध्यम, चेहरा चौड़ा, सिर मध्यम सीना चौड़ा सह मध्यम तथा ये अति परिश्रमी, उद्योगी होते हैं। नृतत्वविद डॉ रिजले ने मुण्डा, सांथाल, उरांव इत्यादि जनजातियों के साथ कुडीम जनजाति के एन्थोगेमेटीक मेजरमेन्ट में एक जैसा प्रायः समता दर्शाया है।

अति आदिमकाल से जंगल साफकर बड़े–छोटे खेत तैयार कर यह जनजाति कृषिकार्य में निपुन होता गया। जनजाति कुड़मियों का परिधान साधारनतः भगुआ, काछा, गामछा, मोटी धोती पहनते हैं। काछा धारीदार दस इंच चौड़ी, नौ हाथ लम्बी होती, गमछा तांत का बुना हुआ पांच हाथ या सात हाथ का होता है। तांत की बुनी हुई धोती नौ हाथ का होती है।

फतुआ गंजी, मोटी कपड़ा का आंगा (कुर्ता) पहनते थे। औरतों के लिए लहंगा, ठेंठी एवं लड़कियाँ पुतली पहनती थीं, साया, मेसीज, ब्लाउज का नामों निशाना नहीं जानती थीं। पुरूष व्यक्ति सिर में पाग बांधते थे।

शहरीकरण एवं आधुनिक पोशाकों के प्रचलन से उक्त परिधान विस्थापित होते चले गए हैं। आधुनिक लड़के तथा शहर निवासी, सरकारी सेवारत जनजाति कुड़मी पुरूष व्यक्ति झारखण्ड के अन्यान्य आदिवासियों की तरह ही सुट–बुट, पेंट, धोती, कुर्ता, कमीज पहनने लगे हैं। जनजाति कुड़मी महिलाएं भी अनान्य जनजाति महिलाओं की तरह ही साड़ी, साया, सेमीज, ब्लाउज तथा ब्रेसियर भी पहनने लगी हैं। लड़कियाँ इजार, फ्रोक, सलवार, कमीज पहनने लगी हैं।

जनजाति कुड़मी महिलाएं हाथ में रेशमी, फारसी चुड़ी, लाह निर्मित रूली पहनती हैं। धनी परिवार की महिलाएं चाँदी निर्मित चुड़ी पहनती हैं। साधारणतः औरतें नंगे गले में रहना अपशगुन मानती हैं। महिलाएं कम से कम रेशम का धागा गले में अवश्य पहनती हैं। मध्यम परिवार की औरतें चाँदी निर्मित हंसली, बिछा, सुत पहनती हैं। बांह में बाजु, हाथ में बाला चांद खाड़हु पैर में चांदी निर्मित बांक, पंजरी, तड़ा तथा लड़कियाँ पैर में मल पहनती हैं। औरतें पैरों की अंगुलियों में झुंटिया पहनती हैं। धनी तथा शहर निवासी औरतें गले में साने की चैन, कानों में सोने की पागरा, हाथों में सोने की चुड़ियाँ पहनती हैं। फूलों की शौकीन होती हैं। खोंपा में फुलों का हार बांधती हैं। पुरूष व्यक्ति कानों में पागरा पहनते हैं, बालों को संवारते हैं।

बिहा संस्कार :– कुड़मी जनजाति में स्वगोष्ठी विवाह निषेद्य है। जैसे केटिआर गोष्ठी (Tribe) के लड़के के साथ केटिआर गोष्ठी की लड़की का विवा विधि निषेद्य है। पहले ही कहा जा चुका है। जनजाति कुड़मियों की गोष्ठी संख्या 81 (इक्यासी) है। अपनी गोष्ठी छोड़कर अवशिष्ट 80 (अस्सी) गोष्ठियों में विवाह सम्बंध स्थापित होता है। विवाह परिवार की अधारशीला है। इस से परिवार की निरंतरता कायम रहती है। विवाह के द्वारा ही यौन संबंध तथा

आर्थिक उत्तरदायित्व के निर्वाहण का अधिकार प्राप्त होता है। जनजाति कुड़मी की आदिवासी स्वशासन व्यवस्था में अर्न्तविवाह व्यवस्था की मान्यता है। बहुविवाह प्रथा को सामाजिक विधिगत मान्यता नहीं है। साधारणतः कुड़मी जनजाति में एक विवाह प्रथा का प्रचलन है। विवाह लड़के के पिता या अभिभावक एवं लड़कियों के पिता या अभिभावक ही तय किया करते हैं। जनजाति कुड़मीयों में विवाह के पूर्व वर के साथ आम–बिहा एवं केनियाई के साथ महुआ बिहा का अनुष्ठान अनुष्ठित होता है। अपुत्रक या निःसन्तान बड़े भाई की मृत्यु होने पर अविवाहित छोटा भाई कइराबिहा कर बड़े भाई की विधवा स्त्री से सांघाविवाह करते हैं। निःसन्तान अवस्था में स्त्री मर जाने से साली से बिहा प्रथा कुड़मी जनजाति में प्रचलित है। कुड़मी जनजाति में तिलक प्रथा नहीं है बल्कि कन्या पोन दिया जाता है। सर–सगुनों में हांडी बिहा का प्रचलन है। वैवाहिक रस्में इस जनजाति के महतो या मांझी तय करते हैं।

जनजाति कुड़मियों के विवाह निम्नलिखित प्रकार के होते हैं –

मड़ुआबिहा या सादाविहा :– इस प्रकार के विवाह में सर्वप्रथम वर पक्ष के लोग केनिआई के गांव के महतो या मांझी के घर जाते हैं और महतो के पास विवाह का प्रस्ताव रखते हैं। खज पुछार के बाद महतो कुटुम्बों को केनिआई के घर ले जाते हैं। केनिआई तथा परिवेश पसन्द होने से विवाह की बातचीत महतो के माध्यम से होती है। इसके उपरांत वर पक्ष के लोग केनिआई पक्ष के लोगों को अपने घर बुलाते हैं। दोनों पक्ष के महतो की उपस्थिति में वर का पिता या अभिभावक एवं केनिआई के पिता या अभिभावक तथा कुटुम्ब परिजनों की सहमति से विवाह तय होता है। उभय पक्षों के मतामत से विवाह कार्यक्रम आगे बढ़ता है। रेबार–लगन एवं विवाह का दिन धार्य (तय) होता है। बिहा के दिन माड़ुआ बांधा जाता है। साजनीडाला सजाया जाता है। साजनीडाला में धाई–माँ का सारभार, केनिआई का श्रृंगार, मिट्टी की चुकरी में दही, मिट्टी की चुकरी में चेंग मछली

बैंगन फाड़ा, बकरी की भेंडारी, धान खई, लहसुन, हेहेल (इंदुर) माटी, भुसकुंढा, नटइ सुता, खंट-खांट की सामाग्रियाँ, धांगड़ सारभार, सजाया जाता है। आमबिहा तथा अमलो खाउआ नेग समापन के बाद बारात गाजेबाजे के साथ केनिआई घर की और प्रस्थान करती है।

केनिआई गांव की सीमा में पदार्पन करते ही खंटखांट के सारभार से उस गांव की देवी-देवताओं की आराधना करते हैं। गांव घुसते ही धुमकुडिया के रक्षक धुमडाओं को धांगड़ का सारभार अर्पण कर सन्तुष्ट करते हैं। केनिआई घर में दरवाजा लगते ही गुआटीका नेग सम्पन्न किया जाता है। माडुआ तल में चौक पुरा जाता है। डाला में बैठाकर केनिआई को माडुआतल लायी जाती है। दही और गुआ (सुपारी) तथा चुकरी की जिंदा मछली से प्रारम्भिक नेग समाधान किया जाता है। चमक चुका की स्थापना, सोनापितर के उपरांत महुआ बिहा अनुष्ठान होता है। आमबिहा में बर का बहनोई पुरोहित्व करता है एवं महुआ बिहा में केनिआई का बहनोई पुरोहित होता है। तत्पश्चात् डुभाभाजन, जड़ठिलिया में हाँडीबिहा, सिनइफेरा, सिंदुर दान आदि नेगों के माध्यम से जनजाति कुड़मी का बिहा सम्पन्न होता है। हर नेग में औरतें कुड़माली बिहागीत गाती हैं। सिंदुरदान का भोज बारातियों को खिलाया जाता है।

दूसरे दिन मरजाद :- केनिआई घर की ओर से बर-बारात कुटुम्ब परिजनों को भोज खिलाया जाता है। बकरा या खस्सी बलि दिया जाता है। गांव के महतो या मांझी देउआन यानि जनजाति कुड़मी आदिवासी स्वशासन विधि से संगठित गांव पंचायत परिषद के लोग इन सारे-कामों की निगरानी करते हैं।

शाम के समय चुमान-बांदान क्रिया अनुष्ठित होती है। चुमान के माध्यम से बर-केनिआई के माथों पर शस्य स्थापन किया जाता है। उसके बाद बाहर-भीतर नेग के उपरांत खिरछुआ नेग सम्पन्न होता है।

तीसरे दिन सुबह बर-केनिआई और बारात की विदाई होती है।

गांव मुड़ा में बरपक्ष–केनिआई पक्ष–कुटुम्ब परिजन साथ मिलकर बहरता का दिन धार्य (तय) करते हैं। विदाई में केनिआई के साथ एक बुजुर्ग बुढ़ी औरत लगदीन सह केनिआई की बहन, सहेलियाँ एवं भाई साथ में जाते हैं।

बर के घर पहुंचते ही दरवाजे में गुआटिका, चुमान, मुंह देखान, बड़ाबड़ी का नेग अनुष्ठित होता है। इसके बाद बर–केनिआई घर में प्रवेश करते हैं। शाम को चुमान बांदान अनुष्ठान होता है। शाम को बर–केनिआई घर घुसते समय बर के बहनें दुआर छेंका नेग अनुष्ठित करती हैं। इसके उपरांत खिरछुआ क्रिया होती है। तत्पश्चात् खार छाड़ी, घटी लुका अनुष्ठान के लिए गांव के तालाब में जाते हैं। तालाब से लौटकर कुल्ही के दरवाजे पर केनिआई के द्वारा पैर धोवन क्रिया की जाती है। उसी समय ससुर, भेंसुर, मामा ससुर आदि की पहचान होती है। उसी समय से भेंसुर, मामा ससुर के साथ छुआइत का (Taboo) यानि धार्मिक विधि निषेध जिन्दगी भर पालना पड़ता है।

ज्ञात रहे माड़ुआ बिहा में बर घर एवं केनिआई दोनों के आंगन में माड़ुआ बांधा जाता है। आम–जामुन तथा घने पत्तेदार डालियों से माड़ुआ का छादन किया जाता है। बर घर के माड़ुआ के बीच की खुंटी आमडाली की एवं केनिआई घर की खुंटी महुआ डाली की होती है। यह सुप्रचीन वन्य स्तरीय आदिमता एवं जनजाति परिचिति का परिचायक है।

2. गलट बिहा :– इस प्रकार के विवाह में जिस घर में बेटी ब्याही जाती है उसी घर से पुतोहु लायी जाती है। इस विवाह को गलट बिहा कहते हैं। सांथाली में गोलाईटी बापला कहा जाता है।

3. सांघा बिहा :– विधुर पुरूष के साथ विधवा औरत की सांघा होती है। छाड़बेड़ में भी सांघा बिहा का प्रचलन है। इस प्रकार की सांघा में केनिआई पोन नहीं दिया जाता है। विधुर पुरूष अपने घर से विधवा के लिए तथा उसकी मां के लिए कुल दो साडियाँ एक मन चावल, एक खसी, तेल मसाले आदि विधवा के घर लेकर जाते हैं।

दोनों गांव के महतो या मांझी की उपस्थिति में सांधा बिहा का कार्य सम्पन्न होता है। माथे पर सिंदुर नहीं देते हैं बल्कि सिंदूर को हाथ में छूकर दे देते हैं इसके पश्चात वह स्त्री स्वंय सिंदूर पहन लेती है। इस प्रकार के विवाह को सांथालों में सांघा बापला कहा जाता है।

4. कइरा बिहा – किसी अविवाहित पुरूष के साथ बिहैली, छोड़वी, अथवा विधवा की सांघा की स्थिति में अविवाहित पुरूष आम बिहा के बजाए केलागाछ से विवाह करते हैं। इसके उपरांत सभी उक्त केनिआई के घर जाते हैं एवं सांधा के जैसा ही विवाह कार्य सम्पन्न होता है। इस प्रकार के विवाह में भी केनिआई पोन नहीं दिया जाता है।

5. बेंदकड़ि बिहा – इस प्रकार के विवाह प्रायः गरीब लोगों के बीच सम्पन्न किये जाते हैं। केनिआई को वर के घर लाकर सिंदुर देकर शादी रचा दी जाती है। इसे संथाली जनजाति में टुनकी दिपील बापला कहते हैं।

6. दू–चुल्हा जरी विहा – पसन्द की केनिआई अगर गरीब घर की होती है तो बर घर के तरफ से ही शादी का सारा सारभार एवं खर्च आदि ले जाते हैं। इसके बाद महतो या मांझी, देउआन यानि कुड़मी आदिवासी स्वशासन की परम्परागत प्रथानुसार गांव पंचों की निगरानी से विधिवत शादी रचा दी जाती है।

7. घरजंउअईआ बिहा – इस प्रकार के विवाह में पुत्रहीन व्यक्ति बर के गांव जाकर परम्परागत पंचों के निर्णय अनुसार बर को अपने घर ले आता है। इसमें बधू पोन नहीं दिया जाता है। शादी के बाद उसे ससुराल में ही रहना पड़ता है। सांथाली बिहा में इसे घरदी जांवांय बापला कहते हैं।

8. राजी खुसी बिहा – इस प्रकार की शादी में लड़का–लड़की आपस में शादी के लिए राजी हो जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में वे गांव के महतो या मांझी के पास जाते हैं। महतो या मांझी एवं देउआन गांव पंचों के साथ लड़की के घर पर जाते हैं। सबों के समक्ष औपचारिक रूप से दुल्हन की स्वीकृति प्राप्त कर लेते हैं। लड़का – लड़की के माथे सिंदुर लगा देता है। इस तरह से विवाह सम्पन्न करा दिया जाता है। सांथाली विवाह पद्धति में

इसे राजा राजी बापला कहा जाता है।
9. प्रेम बिहा – लड़के लड़की में जब प्रेम हो जाता है लेकिन उभय पक्ष के पिता या अभिभावक शादी के लिए राजी नहीं होते है अथवा कोई एक पक्ष राजी नहीं होते है तब महतो–मांझी सह परम्परागत पंच के लोगों के सामने सिंदुर लगाकर विवाह सम्पन्न करा दिया जाता है। बर के पिता या अभिभावक को भोज देना पड़ता है। संथाली संस्कृति में इसे अपगीर बापला कहते हैं।
10. भेगडु बिहा – इस प्रकार के विवाह में लड़का–लड़की घर से भाग जाते हैं। कुछेक दिन जहाँ तहाँ रहते है। एक दुसरे को माला पहनाते हैं। बाद में महतो या मांझी तथा कुड़मी जनजाति के परम्परागत पंचों की उपस्थिति में सिंदुर पहनाकर विवाह सम्पन्न करा दिया जाता है। दोनों पक्षों को अपने अपने गांव में भोज देना पड़ता है। सांथाली प्रथा में इसे बहादूर बापला कहते हैं।
11. दुकनि बिहा – लड़का लड़की में आपस में प्रेम हो जाता है। लड़की अपनी माता–पिता की अनमुति के बगैर खुद से लड़के के घर में प्रवेश कर जाती है। लड़के के घर वाले उसे जोरपूर्वक घर से खदेड़ना चाहते हैं लेकिन लड़की फिर भी घर से नहीं निकलती है तब आदिवासी कुड़मी परम्परागत पंचों के हस्तक्षेप से विवाह रचायी जाती है। सांथाली में इसे निर्वोलक बापला कहते हैं।
12. सिंदुर घंसाबिहा – जब लड़की के मनपसंद लड़के के साथ उसके पिता–माता शादी के लिए राजी नहीं होते है तब ऐसी स्थिति में लड़का सुयोग अवसर पर लड़की के मांग में सिंदुर दे देता है। इसके उपरांत परम्परागत पंचों के निराकरण से उक्त लड़का–लड़की को दाम्पत्य जीवन जीने का निर्णय कर दिया जाता है। सांथाली प्रथा में इस प्रकार विवाह को इतुत बापला कहते हैं।

13. माथा भारी बिहा – जब कोई अविवाहित लड़की गुप्त यौन संबंध से गर्भवती हो जाती है तब ऐसी स्थिति में अवैध संबंध में दोषी लड़के का पता लगाया जाता है। जनजाति कुड़मी बाईसी प्रथायिक विधि द्वारा कठोरता से निर्णय लिया जाता है एवं शादी रचा दी जाती है। सही पता नहीं लगने पर उस गर्भवती को शादी करने के इच्छुक को धनराशि दी जाती है एवं शादी रचा दी जाती है। सांथाली प्रथानुसार इसे कोरिंग जावाय बापला कहा जाता है।

प्रथायिक छाड़बेड विधि

जनजाति कुड़मी की परम्परागत आदिवासी स्वशासन विधि व्यवस्थानुसार प्रथायिक छाड़बेड़ या तलाक की निम्न विधि का प्रचलन है –

स्वामी की ओर से तलाक – स्वामी और स्त्री में अनबन की अति हो जाने पर स्त्री स्वामी के साथ नहीं रहने का मन बना लेती है और ननिहाल में ही रहने लगती है। तब स्वामी लाचार होकर समाजिक प्रथामिक विधि के अनुसार अपने गांव के महतो या मांझी के साथ अपने ससुराल में महतो या मांझी के घर जाता है और सारी बातें कह सुनाता है। उसके बाद दोनों गांव के महतो या मांझी पंचों के साथ उक्त व्यक्ति के ससुराल जाते हैं सहमति नहीं बनने पर तलाक की बातें तय होती हैं। तलाक या छाड़बेड़ की स्थिति पर स्त्री के पिता की ओर से ली गई कन्या पोन जेवरादि फेरूत (वापस) कर दी जाती है। आम का पत्ता चीरकर या आम खेड़का टुंगकर पंचों के सामने दे दी जाती है। इस तरह से छाड़बेड या तलाक की सामाजिक स्वीकृति हो जाती है।

स्त्री की और से छाड़बेड – स्त्री को ससुराल नहीं लाने पर स्त्री अपने पिता या अभिभावक के साथ ससुराल आती है। स्वामी अथवा सास – ससुर द्वारा स्वीकार नहीं करने पर गांव के महतो या मांझी के घर जाती है। स्त्री उनसे अपनी सारी दु:ख की बातें कह सुनाती है। महतो या मांझी उस स्त्री

के ससुराल आते हैं और स्त्री के स्वामी, सास, ससुरों को समझाते हैं। सहमति नहीं होने पर उस औरत को अपने ननिहाल के महतो, मांझी के साथ पुनः आने को कहते हैं। विधि अनुरूप पुनः आने से दोष–गुण का विचार होता है सहमति नहीं होने पर स्त्री पंचों के सामने लाचार होकर महुआ पत्ता चिरती है या महुआ खेड़का टुंगती है तथा हाथ से लौहा का खाड़ु उतारकर पंचों की उपस्थिति में स्वामी के हाथ में दे देती है। इसमें कन्या पन या जेवर लौटाया नहीं जाता है। इस तरह स्त्री की और से छाड़बेड या तलाक क्रिया सम्पन्न होती है।

आर्थिक अवस्था – कुड़मी जनजाति के लोग कृषिजीवि होते हैं। खेती के प्राक्काल में कदो, गुंदली, मडुआ, सांवा, कुरथी, बिरही आदि की खेती इनकी आजीविका रही है। तिलहन में तिलगुंजा, तिसि की खेती करते हैं। इन फसलों को राढ़ी खद कहा जाता है। क्रमशः महिलाएं छोटे–छोटे खेत तैयार कर फसल उगाने लगी। पुरूष व्यक्ति जंगलों में शिकार करते रहे। कालान्तर में सत–नाला अड़ियाकर बडे–बेड़े खेत तैयार होने लगे, हल बैल से खेती होने लगी। खेती का काम पुरूषों के हाथों में आया। महिलाएं घरेलू काम करने लगी। पुरूष बड़, पिपड, भेलुआ, केन्द, पिआर, महुआ आदि संग्रह कर तथा मतस्य, पशु, पक्षी का शिकार कर जीविका चलाने लगे। इन कार्यों में गर्भवती महिला तथा बच्चे–बच्चियों को शामिल नहीं करते हैं। आवश्यकता पडने पर मर्द दूसरों के खेतों में मिट्टी काटकर गजारा चलाते हैं। इनकी आर्थिक स्थिति अत्यंत दयनीय रही है। कालांतर में खनिज–खदान, कल कारखाना की स्थापना होने से श्रमिक का भी काम करने लगे हैं। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में दो से तीन प्रतिशत ही विभिन्न नौकरियों में हैं। गिनेचुने लोग ही उच्च शिक्षा में शिक्षित तथा सरकारी उच्च पदों में आसीन हैं। अंग्रेजी हुकुमत के फुट डालो और शासन करो की नीति तथा उच्च वर्णों की छल कपट से 1950 ई0 में अनुसूचति जनजाति की सूची में शामिल नहीं किए जाने से अन्य जनजातियों की तरह न तो शिक्षा में सरकारी सुविधा मिली या सरकारी नौकरियों में ही प्राथमिकता

मिल पायी। विभिन्न सरकारी विकास योजनाओं में जनजाति कुड़मी भारी संख्या में विस्थापित हुए। परिणामतः इनकी आर्थिक स्थिति चरमरा गयी। गलत सरकारी नीति के कारण वन सम्पदा समाप्त होती चली गई जिससे वर्षाचक्र बिगड़ता चला गया। जलाभाव के कारण कुड़मियों का एकमात्र पेशा खेती में प्रतिकुल प्रभाव के फलस्वरूप फसल की पैदावार दिनोंदिन घटती जा रही है। इस तरह अपनी परम्परागत निवास भूमि के अनान्य जनजातियों की तरह जनजाति कुड़मियों की आर्थिक स्थिति अत्यंत दयनीय होती जा रही है।

सामाजिक जीवन – जनजाति कुड़मी जनसमुदाय लगभग 99% प्रतिशत दूर देहात गांवों में निवास करते हैं। झारखण्ड में बहिरागत तथा राजा, जमींदारों के आगमन एवं निवास तथा उच्च वर्णों के निवास स्थल से स्वभावतः दूर हटकर यहाँ की जनजातियाँ निवास करती हैं। कुड़मी जनजाति के परिवारों का स्वरूप अन्य जनजातियों की तरह ही प्रारम्भिक काल में मातृ सत्तात्मक रही होंगी। ममेरे, फुफेरे, मौसेरे परिजनों को ही समाजिक अनुष्ठानों में अधिक सम्मान दिया जाता है। मातृसत्तात्मक समाज व्यवस्था कालान्तर में बदल कर पितृसत्तात्मक हुई है। वर्तमान में परिवार की आधारशीला पूर्णतः पितृसत्तात्मक है। कुड़मी जनजाति में धनीवर्ग नहीं के बराबर हैं। गिनेचुने लोग शहर निवासी एवं सरकारी पदों पर नौकरी करते हैं वे ही सुखी जीवन व्यतित करते हैं। ऐसे लोगों की संख्या इतनी कम है कि इन्हें प्रतिशत में आंका नहीं जा सकता है। अधिकांश लोग निम्न स्तरीय सामाजिक जीवन एवं लगभग तीन या चार प्रतिशत लोग ही मध्यम सामाजिक जीवन बसर कर रहे हैं।

जनजाति कुड़मी महिलाएं सरल एवं परिश्रमी होती हैं। अन्य जनजातियों की तरह ही कुड़मी महिलाएं भी रेजा (मजदूरी) का काम करने के लिए बाहर जाती हैं। अंग्रेजी हुकुमत में संथालादि जनजातियों के साथ कुड़मी जनजाति के लोग भी काफी संख्या में आसाम, काछाड़, बांग्लादेश के चाय बागानों में रेजा–कुली के रूप में चालान किए गये हैं।

डॉ पशुपति प्रसाद महतो जी ने इस संबंध में अपनी लिखित पुस्तकों में विस्तृत रूप से दर्शाया है।

बच्चों के लालन–पालन करने, भोजन बनाने, कृषि तथा उद्योग धंधों में जनजाति कुड़मी महिलाएं अहम भूमिका निभाती हैं। हाटों की खरीद–बिक्री में कुड़मी महिलाएं निपुन होती हैं। शिकार करने, पाहनाई या नैआली काम में, पेड़ चढ़ने, घर छादन तथा हल जोतने में महिलाओं की पाबन्दी है।

विवाह के समय कुड़मी जनजाति में कन्या पोन यानि वधू मूल्य चुकाना पड़ता है। अविवाहित कन्या पिता की सम्पत्ति मानी जाती है। कन्या विवाहोपरांत अपने पति की सम्पत्ति होती है। विवाह के समय "हरिबल" ध्वनि का उच्चारण सामुहिक रूप से किया जाता है। बुजुर्ग पुरूष या महिलाओं का सामाज में आदर किया जाता है।

पर्व–त्यौहार

जनाजाति कुड़मियों में पर्व–त्यौहार का विशेष महत्व है। खेतीहर तथा कृषिजीवि होने के कारण इनके सभी पर्व–त्यौहार कृषि से संबंधित हैं। सभी पर्व–त्यौहार सामुहिक रूप से मनाये जाते हैं। नैइया या पाहन सभी की ओर से व्रत रखते हैं। सामुहिक कल्याण–कामनार्थ पूजा–अर्चना करते हैं। इसके लिए नैइआ को खतियानी नैइअड़ी दान–विक्रय –हस्तांतर निषिद्ध निष्कर जमीन दी गयी है। पारिवारिक व्रत भी रखे जाते हैं। जनजाति कुडमियों के पर्व–त्यौहार पहले माघ 'आखान जातरा' से प्रारम्भ होता है। आज से करीब छः सौ वर्ष पूर्व पहला माघ से कृषिवर्ष प्रारम्भ होता था।

वर्षभर के अंतराल में आखान जातरा, सिझानअ पर्व, सारहुल पर्व, भगता पर्व, रहईन पर्व, जांताड़ पर्व, करम पर्व, छाता पर्व, दासांञ पर्व, जिलहुड़ पर्व, सोहराई पर्व, डिनि सांकारात पर्व मनाये जाते हैं। ये सभी पर्व अवैदिक प्रति से सम्बंधित है। प्रति पर्व में

पुरखों को स्मरण किया जाता है तथा पूजा अर्चना, आराधना की जाती है। कुछेक पर्वों में जादू–टोना क्रिया भी अनुष्ठित होती है। ये पर्व –त्यौहार शस्य उत्पादन सह प्रजनन क्रिया पद्धति से जुड़े हुए हैं। कुड़मी जनजाति सह अनान्य जनजातियाँ भी इन पर्व–त्यौहारों को हर्षोल्लास पूर्वक मनाते हैं। किसी भी त्यौहार में मूर्ति पूजा नहीं होती है। कुड़मी समेत कोई भी जनजाति मूर्ति पूजक नहीं है। सभी जनजातियाँ प्रकृति पूजक हैं।

1. आखाइन जातरा त्यौहार – यह त्यौहार जनजाति कुड़मी नेगाचार में चार दिन मनाया जाता है। चारों दिन इस पर्व को अलग–अलग नामों से मनाया जाता है। चांउड़ी, बांउड़ी, मकर, आखाइन। यह पर्व मूलतः सुर्य यानि बेरा यानि कुड़माली देव मण्डल के अनुसार आखाइन/ भानसिंह/गसाञराइ का दक्षिणायण से उत्तरायण की ओर यात्रा के पूण्य थ्दवस के रूप में मनाया जाता है। जनजातियों के विश्वास में आखान जातरा के दिन से ही दिन क्रमशः बड़ा होता है। जनजाति कुड़माली भाषानुसार सूर्य दक्षिण से चड़किकुहुन (उछलकर) उत्तर दिशा में घुमने की मुद्रा में आते हैं। बांउड़ी में बांउआ महड़ी घुमने की स्थिति में मकर को उत्तरदिशा की ओर चलने की पूर्ण स्थिति में आते हैं। तमिल तथा कुड़माली भाषा में मकर का अर्थ 'स्थिर स्थिति' है अगला दिन सूर्य या आखान या भानसिंह या गसाञ राइ का होता है जो उत्पादन या प्रजनन में पुरूष या प्रकृति के मिलन में पुरूष की भूमिका निभाते हैं। जनजाति कुड़मी जनसमुदाय के लोग इसी दिन कृषि की शुरूआत 'हारपुनहा' तथा किसी भी शुभ कामों का शुभारंभ करते हैं। सामर्थानुसार नया परिधान पहनते हैं तथा विभिन्न मेलानुष्ठानों में उपस्थित होते हैं। आनन्द उत्सव में एकत्रित होते हैं। सारनास्थल में मुर्गी आदि बलि दी जाती है।

2. सिझानअ परब – सुप्राचीन रणवन, बिजुवन, अरूणवन, बाधावन, झाड़ीवन, अति आदिम जनजातियाँ (Primitive Trives) मुण्डा, सांथाल, कुड़मी, उरांव, खेडिया, हो आदि की आदिम निवास भूमि रही है।

यहाँ के आदिम गुणी–ज्ञानीगण निर्धारित आखड़ा मे अपने चेलों को श्रुति के रूप में गुण विद्या सिखाते आ रहे हैं। आज के बसन्त पंचमी के दिन उन चेलों को सिद्धि देते हैं। चेले सिझल–भिंजल (अनुभवी) हो जाते हैं। इस अवसर पर ज्ञान एवं गुण के लिए उच्च अलौकिक शक्ति की सामुहिक आराधना, पूजा अर्चना करते हैं। अवैदिक परम्परागत सिझानअ पर्व अनुष्ठित होता है। आधुनिक मूर्ति–मन्त्र वैदिक स्वरूप में उसका विकल्प सरस्वती पूजानुष्ठान मनाना प्रारम्भ हुआ है। लेकिन जनजाति कुड़मी जन समुदाय परम्परागत सिझानअ परब मनाते हैं।

3. सरहुल परब – मधुमास यानि बसन्त ऋतु में हरियाली, तथा रंग–बिरंगे फुलों से सुसज्जित आदिम जनजातियों की निवास भूमि में आदिवासी कुड़मी सह सभी आदिवासी समुदाय सरहुल परब मनाते हैं। संथाल लोग इसे बाहा कहते हैं। संथाली भाषा में सरहुल को बाहा कहा जाता है। सभी जनजाति जन समुदाय की ओर से 'पाहन' या 'नेइआ' व्रत रखते हैं। सारना तथा जाहिरा स्थल की फूलों से पूजा–अर्चना करते हैं। पुष्प प्रसाद लेकर नेइआ घर–घर घुमते हैं। नेइआ का पैर धोया जाता है। प्रसाद के रूप में नेइआ फुलों का गुच्छा लेकर घर–घर बांटते हैं। बाजा–गाजा के साथ ग्रामवासी उल्लसित पुलकित हो मसगुल हो जाते हैं।

4. भगता परब :– जनजाति कुड़मी लोक कथा में परम्परागत कुड़मी समुदाय की सृष्टि के आदि पुरूष रेंगहा हाड़ाम (रंगहा बुड़हा) की अंत्येष्टि बेला मानकर सुसंजत भक्तों द्वारा अनुष्ठित पूजा–अर्चना अनुष्ठान को भगता परब कहते हैं। चैत माह के बारहवें दिन से यानि बारनी से चैत संक्रान्ति तक संजत व्रत पालन करते हैं। कुछ भगता चड़क व्रत के व्रती भी होते हैं। सृष्टि का मूलाधार पुरूष प्रति गंभिरा के स्वरूप में मण्डप में स्थापित रहता है। किसी की मूर्ति नहीं रहती है। पूजा–अर्चना तथा नृत्य – गीत के अवसर पर भारी भीड़ एकत्रित होती है। इस अनुष्ठान में शस्य उत्पादन एवं प्रजनन की जादू टोना की जाती है। चड़क व्रत के दिन से ही कुड़मी जनजाति की महिलाएं छोटी – छोटी

क्यारियों में बीज रोपन का काम प्रारम्भ कर देती हैं। इस परब में पुरूखों को कुड़हा संदेश प्रसाद के रूप में अर्पन किया जाता है। कुटुम्ब परिजन एक घर से दूसरों के यहाँ कुड़हा संदेश भेजते है। इसीलिए इसे कुड़हा परब, चैत परब भी कहते हैं। इस वरब में मनोरंजन हेतु तरह तरह के अनुष्ठान आयोजित होते हैं।

5. रहइन परब – यह परब प्रति वर्ष जेठ महीने के तेरह तारीख को होता है। इसे शस्य उत्सव के रूप में मनाया जाता है। अच्छी फसल की कामना से कुवारी लड़कियाँ रहइन मिट्टी खेत से लाती है। यह मिट्टी जादू–टोना के काम में लायी जाती है। इसी दिन से गुणियों से गुणविद्या सीखने का कार्य प्रारम्भ होता है। विषाक्त कीड़े–सांप आदि घर में प्रवेश नहीं करे इसके लिए जादू टोना किया जाता है। सूर्योदय के पहले ही घर की दीवारों में 'गोबर का बेड़ा' दिया जाता है। फसलों के लिए खेतों में बीज बोये जाते हैं। रात भर गाना गाकर तथा नृत्य कर बीजों को जगाते हैं। यह अनुष्ठान गांव के आखाड़ा में सामुहिक रूप से होता है। जनजाति कुड़मियों का सामुहिक उत्सव है। गांव के महतो या मांझी, देवआन, नेइआ की भूमिका अग्रणी होती है।

6. जांताड़ परब :– इसे आषाढ़ माह में मनाया जाता है। नेइआ ग्रामवासियों की ओर से संजत उपवास करके व्रत रखते हैं। सारना स्थल या जाहिरा स्थल में इस परब का आयोजन किया जाता है। पूरखों द्वारा स्थापित कुड़माली देव मण्डल के सभी देव देवियों की पूजा अर्चना की जाती है। हर घर से निर्धारित भेजा (चंदा) देकर बकरा, कुंआरी बकरी, मुर्गी, सुकर आदि बलि चढ़ायी जाती है। इस परब के बाद ही ऑफर (बीज) या शस्यों का चारा बोया जाता है। गांव में 'जांता छुइत' या 'मरखी छुइत' होने से इस अनुष्ठान को अनुष्ठित करने की प्रथायिक विधि नहीं है। आदिवासी स्वशासन व्यवस्था के अधिकारी यानि गांव के महतो या मांझी, देउआन तथा पंच के सदस्यों की

निगरानी में गाँव के नेइआ या पाहन जांताड़ परब अनुष्ठान की क्रिया सम्पन्न करते हैं। यह परब जनजाति कुड़मियों का सामुहिक परब है।

7. करम परब – करम परब भादो महीने में मनाया जाता है। जनजाति कुड़मी की सृष्टि संबंधी लोककथा के अनुसार वनस्पति यानी भाई का प्रतीक 'वृक्ष' एवं बहन का प्रतीक 'जाउआ' जिनकी सृष्टि के मूलाधार बेरा अर्थात गसाञ राइ यानि भानसिंह पुरूष एवं प्रकृति 'धरा' यानि जाहिर बुड़ही रही है। इस परब को करम वृक्ष रूपी भाई एवं जाउआ यानि शस्य रूपी बहन का अनुष्ठान माना जाता है। इस तरह से यह भाई एवं बहन का परब है। जनजाति कुड़मी के इस परब की शुरूआत एक सप्ताह पहले से होती है। कुंवारी लड़कियाँ गांव के महताईन के घर जाती हैं। महताईन एक नयी डाली, कुरथी, मुंग, तेल–हल्दी देती है। जोड़िया या नदी किनारे जाकर बालु उठाती हैं। तत्पश्चात् जाउआ बुनती हैं। यह जाउआ सामुहिक होता है। इसे सांची जाउआ कहा जाता है। लड़कियाँ इसपर अपनी अपनी खुंटी गाड़ती हैं। इसके अलावा लड़कियाँ अलग से अपनी अपनी डालिया (टुपा) में जाउआ बुनती हैं। सात दिन शाम सुबह जाउआ बढ़ाती हैं, निगरानी करती हैं, पानी पटाती हैं, नाचती गाती हैं। भादो दशमी को संजत और दूसरे दिन उपवास करती हैं। उपवास के दिन गांव के नेइआ करम डाली लाते हैं और आखड़ा में गाड़ते हैं तथा व्रत करते हैं। लड़कियाँ व्रत रखती हैं और नेइआ पूजारी होते हैं। लड़कियाँ जाउआ की माँ बनती हैं। इस परब में लड़कियाँ सन्तान प्रशविनी माता की तरह नियम पालन करती हैं। अपने हाथो से दतवन नहीं तोड़ती, हाबु देकर स्नान नहीं करती, खोंपा (जुड़ा) नहीं बांधती, अपने हाथों से नमक नहीं खाती, दही नहीं खाती, गुड़ या मिठा नहीं खाती, साग नहीं खाती। इससे सांची जाउआ तथा अन्यथा जाउआ के बिगडने का तथा नष्ट होने का डर नहीं रहता है। अन्यथा दतवन तोड़ने से जाउआ का टुटने का, हाबु देकर स्नान करने से ढहने का, खोंपा बांधने से जोट लगने का, नमक से गलने का, दही से फुफुन्दी लगने का, मिठा खाने से चिंटी लगने का, साग खाने से हरियर होने का डर

रहता है। इस परब में बहनें भाईयों की मंगलकामना तथा शुभ चिन्ता एवं दीर्घायु की कामना करती हैं। भाईयों की रक्षार्थ जंगली घांसों की काखना से राखी बांधती है। सप्ताह भर नृत्य और गीतों से जनजाति कुड़मी की निवास भूमि उझल–पाझल (आनंदित) रहती है। सभी गीत कुड़माली भाषा में गाये जाते हैं।

8. छाता परब – जनजाति कुडमियों का परम्परागत सुप्राचीन आदिवासी स्वशासन के तहत गांव के महतो या मांझी का एकछत्र स्वाधिकार का वार्षिक अनुष्ठान है। हर साल भादो महिने के संक्रान्ति के दिन यह छाता त्यौहार मनाया जाता है। पहले ही कहा गया है कि जनजाति कुड़मी कृषिजीवि रहे हैं। इनके अपने खेत होते हैं। उक्त स्वशासन विधि के अनुसार खेतों के मालिकाना अधिकार स्वयं को होता है। इस अवसर पर हर खेत में छाता–डाली गाड़ी जाती है। इसका उद्धेश्य प्रथमतः खेतों में मालिकाना हक की घोषणा, द्वितीयतः दिन में उस डाली पर बैठकर ढेबचु पक्षी कीडे–मकौड़ों को खा जाते हैं, रात में फेचा या उल्लु पक्षी चुहों को खा जाते हैं। इस तरह से फसल की रक्षा होती है। घर में कुल्ही तरफ सदर दरवाजे में स्वाधिकार की छाता डाली गाड़ते हैं। इस दिन रात भर बाजा गाजा के साथ गांव के आखड़ा में नृत्य–गीत होता है। यह एक सामुहिक त्यौहार है। जगह–जगह भारी भरकम भीड़ से मेले लगते हैं। इसे शस्योत्सव भी कहा जाता है। यह अवैदिक त्यौहार है।

9. जितिया परब – यह प्रजनन का सामुहिक पर्व है। सन्तान कामना के लिए इस पर्व का उद्‌जापन किया जाता है। हर सन्तानवती माताएं व्रत रखती हैं। घर आंगन साफ सुथरा कर करम व्रत या जाउआ व्रत के बारह दिवस के बाद इस त्यौहार का अनुष्ठान किया जाता है। गांव के नेइआ आंख, केउआ, बड़ डाली, पांकुड पेड़ की डाली, बांस की कनई पत्ता समेत जिनके घर में जितिया डाइर गाड़ा जाता है पहुँचा देते हैं। फूल के रूप में धान फूल (धान के पत्ते) व्यवहार किये जाते हैं। हरितकी का फल, बेटा का प्रतीक खिरा बेटा, आरूआ

चावल की गुंड़ी, सिंदुर, नैवेद्य तथा घी अथवा शुद्ध सरसौ के तेल के दीपक से पूजार्चना की जाती है। संजोत के दिन चना, मुंग, कुरथी का आंकुर थापा जाता है। चालहो सिआरी की पूजार्चना होती है। आंकुर स्थापना से आंकुर उझला तक गोष्ठी में किसी की मृत्यु हो जाने से उस गोष्ठी का जितिया पर्व समाप्त हो जाता है। पुनः गोष्ठी में सन्तान जन्म लेने से, गाय या भैंसी इस पर्व के संजोत या उपवास के दिन यानि सप्तमी अष्टमी तिथि के अन्दर बच्चा देने से गया हुआ पर्व वापस लौटकर आता है। जिनके घर में प्रजनन होता है उस घर में जितिया डाली गाड़ी जाती है। इसे गोष्ठी पर्व या सामुहिक त्यौहार कहा जाता है। पड़ोस तथा कुटुम्ब परिजनों को आंकुर प्रदान किया जाता है। जनजाति कुड़मी बासी भात का नेग उद्जापित करते हैं। यह त्यौहार मूर्तिपूजक नहीं प्रकृति पूजक है।

10. दासाञ परब – यह परब आसिन माह में मनाया जाता है। आपस के भेदभाव को भूलकर गले से गले मिलते हैं। बड़े–बुढ़ों–बुजुर्गों के पैर छुकर (प्रणाम) गड़ लगते हैं। इस त्यौहार को गड़लागी तथा दासाञ माजरा भी कहा जाता है। जनजातीय जनसमाज अवैदिक आचार में मूर्ति विहिन प्राकृतिक त्यौहार के रूप में मनाते हैं। ज्ञात रहे इस आदिम जनजातियों के प्राचीन निवास भूमि में वैदिक आचार के धारक वाहक तथा मूर्तिपूजकों का आगमन बाद में हुआ है, वे लोग इसे दूर्गा पूजा के रूप मनाते हैं। नव पतरी को रम्भा, कचू, हल्दी, जयन्ती, बेल, डालिम, अशोक, मान एवं धान से सजाया जाता है जो कृषिज पदार्थ है। अतः इस त्यौहार को कृषि त्यौहार या शस्य उत्सव भी कहा जाता है।

11. जिलहुड़ परब – यह परब मूलतः कुडमियों के जादू–टोना का सामुहिक परब है। कृषिजीवी तथा खेतीहरों के खेतों में फसल तैयार होने के समय अर्थात आसिन माह के संक्रान्ति के दिन मनाया जाता है। जिल+हुड़ =जिलहुड़ शब्द बना है। जिल शब्द जिन का पर्यायवाची है।

जिन (Giin) का अर्थ है अपदेवता इसे लोग चरभूत भी कहते हैं। हुड़ शब्द का अर्थ है "विताड़न"। अतः जिलहुड़ का अर्थ है अपदेवता या चरभूत का विताड़न करना। फसल तैयार होने के बाद खलिहान में लायी जाती है। खलिहान में जमा की गई फसल की रक्षार्थ खलिहान में जादू–टोना की जाती है। मुड़ही भूजा खापोरी, केंद की लुआठी, चुना, भेलुआ का तेल, ढुठकु बाड़हेइन, बड़ का ढुला बीच खलिहान को साफ सुथरा कर उस जगह रखते हैं। सखुआ पत्ते का दीया बनाकर दीप जलाते हैं। श्रद्धा के साथ प्रणाम करते हैं। ताकि खलिहान का साहाइर उक्त अपदेवता या चरभूत चोरी करके ले नहीं जा सके। गांव के हर घर में इस जादू–टोना क्रिया को किया जाता है। रातभर गांव के आखड़े में औरत–मर्द नाच–गान करते हैं।

12. सोहराय परब – जनजाति कुड़मी इस परब को कर्तिक अमावस्या तिथि को मनाते हैं। यह परब गोधन की सेवा–सुसार, जतन केन्द्रीत सामुहिक त्यौहार है। कुड़मी जनसमुदाय के लोग नेगाचार मूलक यह त्यौहार पांच रोज मनाते हैं। घाउआ, आमास, गरइआ, बरदखुंटा, गुंड़ही बंदाना। आदिवासी स्वशासन विधि के अनुसार गांव पंच के अधिकारी महतो या मांझी, देउआन आदि की निगरानी में यह परब अनुष्ठित होता है। इस पर्व में नौ दिन, सात दिन, पाँच दिन तक बैल, भैंस आदि के सिंग में तेल दिया जाता है।

आमास के पूर्व दिन घाउआ। धाउआ में रात को गोहाल घर में घी की घाउआ बाति जलाई जाती है। घर–घर घाउआ सम्बंधित सोहराय गीत गाया जाता है। आमास के दिन गढुएइर में गठ पूजा की जाती है। नैइआ व्रत रखता है। बाघुत सह अनान्य देवी–देवताओं के नाम रंग–विरंगे मुर्गा–मुर्गी की बलि दी जाती है। रात में धिंगोआन – सदलबल गाजा बाजा के साथ सोहराई गीत गाकर गाय बैल, भैस को जगाते हैं। तीसरे दिन गरइआ। इस अनुष्ठान में गोहाल

घर में देव–देवियों की पूजा–अर्चना होती है। रंग–बिरंग की मुर्गी, छाग, छागी, सुकर बलि उतसर्ग की जाती है। सिंग में तेल, सिंदुर, मडुएइर बांधा जाता है। घर की मालकिन जानवरों को चुमाती है। खापड़ा या सारूरा में आग, भेलुआ, बंगौउरा, चुइल देकर निंगछा–छेउरी करती है। इसके साथ बोलती हैं –

चरइतें बाझइते जाखर नजइर नि सहाइन
ताखर नजइरें भेलुआ बंगउरा

इस तरह से बैलों के देह को बांधा जाता है। इसलिए इस परब को बांदना परब भी कहते हैं। चौथा दिन बरद खुंटा त्यौहार। घर, आंगन, बैल, भैसों को धोकर साफ सुथरा कर सिंगो में तेल, सिंदुर, सोलह कली वाली धान सिस का मडुअइर सींगों में बांधा जाता है। घर की मालकिन बैल–भैंसों के पैर धोकर चुमाती हैं। उक्त निंगछा–देउरी से डांगअरों (जानवरों) की देह को बांधती हैं। दोपहर बाद कुल्ही में सख्त खुंटा गाड़कर बैल–भैंसा को मजबुत रस्सी से बांधते हैं। औरत मरद सज–धज कर गाजा बाजा के साथ सामुहिक प्रदर्शन में भाग लेते हैं।

पंचम दिन गुड़ही बंदाना उत्सव। बांझी गाय, जिसे गुड़ही कहा जाता है उसे बरद खुंटा जैसा ही बांधकर भिड़कायी जाती है। जनसाधारण का विश्वास है कि इससे बांझ या गुड़ही गाय ऋतुमती–गर्भवती होती है। इसी दिन सुबह जनजाति कुड़मी जनसमुदाय अपनी बाचिक गोष्ठी के वाचिक दाग से बकरियों, बाछा–बाछियों को दाग देते हैं। यह दाग आदिम पशुपालन स्तर की आदिमता का परिचायक है। इस तरह सोहराइ परब का समापन होता है।

13. सांकरात परब – यह परब अगहन् महीने की संक्रान्ति में मनाया जाता है। धान खलिहान में लाया जाता है। शस्य देवी को ठाकुर माञ नाम से नेगाचार में रात को खलिहान लाया जाता है। इसे डिनि भी कहा जाता है। इस संकरात को डिनि सांकरात भी कहते हैं। घर आंगन साफ सुथरा करते हैं। यह परब जनजाति कुड़मियों का

सामुहिक परब है। पहले पौष को डिनि जिरान के रूप में मनाया जाता है। अगहन सांकरात की रात में लड़कियाँ टुसु पातन अनुष्ठान करती हैं। नये सारूआ का आरूआ चावल की गुड़ी लेपन कर उसमें गोबर ढुला, आरूआ धान, दुबघास स्थापन कर, शस्य देवी डिनि को कुडारी स्वरूपा सर्व शीर्ष स्थलभिषित्का टुसु धन कहकर सम्बोधित करते हैं। उसे मानवी रूप लड़की मानकर टुसु पाताने वाली लड़कियाँ खुद को उनकी माँ मानती हैं। लड़कियाँ हर दिन तरह तरह के गीतों से गीत मंगल करती हैं। सांकरात परब में तरह तरह के भोजन घर घर बनते हैं। रातभर आनंद उत्सव मनाते हैं। संपूर्ण पौष महिना रात को टुसु घन के नाम पर हर रात एक एक फूल अर्पन कर गीतानुष्ठान चलता है। चाउंडी–बांउड़ी के बाद मकर के दिन टुसु विसर्जन किया जाता है।

धार्मिक जीवन

कुड़मी जनजाति का धार्मिक जीवन अनेकों देवी – देवताओं तथा पुरखों की प्रेतात्माओं में विश्वास एवं परब–त्यौहारों से जुड़ा हुआ है। गठ पूजा, गोहाल पूजा में एवं जांताड़ परब के गराम पूजा में गसाञराइ, जाहिर बुड़ही, रेंगहा हाड़ाम (बुड़हा), रेंगहि – बुड़ही, बड़अ पहाड़, लिलौरी देवी, बाघुत, कुदरा, गाउंराखा मुलतः इन नौ देव–देवियों की पूजा की जाती है। इसका निवास सारना या जाहिरा स्थल में है। इनके मन्दिर में मूर्तियां नहीं होती हैं। झारखण्ड क्षेत्र में कुड़मी जनजाति सह सभी जनजातियों के आराध्य देव – देवियों का निवास स्थल सारना या जाहिरा स्थल ही है। जनजाति कुड़मी जनसमुदाय का विश्वास है कि हर उपयोगी चीजें विशेष देवी–देवता ही मुहैया करते हैं तथा स्थल विशेष आपद–विपदों में रक्षा भी करते हैं। पानी की देवी बु सिनि पहाड़ों के देवता बड़अ पहाड़, जंगलों की देवी – लिलौरी या वनदेवी, उनके अनुचर पहाड़ या जंगल पार करते समय रक्षा करते हैं, दुआरसिनि घाटसिनि, स्थान विशेष में

निवास करती है –पांचबहिनि–सातबहिनि। गासाञ राई को धरम ठाकुर आखान देवता (सूर्यदेव) मानते हैं, जाहिर बुडही को वसुमाता (पृथ्वी) अर्थात गसाञराइ और जाहिर बुड़ही पुरूष और प्रकृति के रूप में आराध्य एवं आराध्या हैं। ये वनस्पति और शस्य उत्पादन के मूलाधार हैं। कुड़मी जनमानस में शस्य देवी डिनि ठाकुराइन या डिनि देवी पूज्य हैं। संपूर्ण समुदाय परब–त्यौहार में पुरखों को स्मरण करते हैं, पूजा–आर्चना में पुरखों को प्रसाद अर्पन किया जाता है। यह जनजाति वेदाचार रहित नेगाचार–देशाचार के धारक–वाहक है। कुड़मी जनजाति प्रकृति पूजक है। अति आदिम यूग से ही यह परम्परा रही है कि कुड़मी जनजाति का धर्म आदिधर्म (सारना या जाहिरा) है।

मृत्यु संस्कार

कुड़मी अजनजाति अमें मरणोपरांत शव संस्कार, अस्थि प्रवाह तथा श्राद्ध की रश्में पूरी की जाती हैं। शव को शमशान ले जाने से पहले घर में शव का हाड़े हरेइद नेग किया जाता है। पति के मरने पर स्त्री लोहे की मठिया को छोड़कर हाथों की चुडियाँ आदि फोड़कर शव की खटिया में रख देती है। स्त्री मरने से पति शव की मांग में अन्तिम सिंदुर पहना देता है। बाद में शव को शमशान ले जाते हैं। शव संस्कार प्रायः शव को जलाकर या दफनाकर करने की प्रथा है। शव को जलाने या दफनाने के लिए मृतक का प्रथम पुत्र अग्नि देने का अधिकारी होता है। अग्नि देने का अधिकार मृतक के क्रमशः पुत्र, पौत्र, भतीजा, पिता और चाचा की है। महिलाएं मुखाग्नि नहीं दे सकती। मृतक को कफन में ढंककर अंतिम संस्कार के लिए ले जाया जाता है। जलाने के समय मृतक की उपयोगी चीजें धनुष बान, लाठी, वस्त्र, तम्बाकु, हुक्का, चिलम आदि शव को सोंप दी जाती हैं। जनजाति कुड़मियों में विश्वास है कि मृतात्मा इस मायामयी दुनियां से चली जाती है।

मरने के बाद आत्मा जहाँ निवास करती है वहाँ उस आत्मा को इन चीजों की जरूरत पड़ती है। शमशान में जलाने के समय उपस्थित घाटुआहा चिता पर एक एक टुकड़ा लकड़ी या दफनाने की स्थिति में एक एक मुट्ठी मिट्टी कब्र में डालते हैं। शिशु तथा अविवाहित की मृत्यु होने से प्रायः दफनाने की ही प्रथा है। शमशान क्रिया समाप्ति के बाद चिता की राख को पानी में बहाया आता है। अस्थि बिछा जाता है या उसी जगह बहा दिया जाता है या किसी अन्य पूण्य नदी स्त्रोतों में विसर्जन किया जाता है। शमशान से लौटते समय कांटा डेहरी की प्रथा है।

मृत्यु के तीसरे दिन गांव के किसी तालाब या नदी के घाट में तेल खैर क्रिया अनुष्ठित की जाती है। रात में मृतात्मा के उद्देश्य से तीता भात या हाबिस भात नामक भोग अर्पन किया जाता है। मृतक के पिता–माता जीवित रहने पर पांच दिन या सात दिन में ही अन्यथा प्रायः दसवें दिन घाटकामान की क्रिया की जाती है। घाटकामान में मृतक के पुत्र, भतीजे, मुख्य अग्नि कर्ता तथा गोष्ठि के सभी पुरूष सिर के बाल मुंड़वाते हैं। मृतक के भेइगना हाथ पकड़कर घाट में उठाते हैं। घाटकामान से घर पहुंचकर छाहेइर भीतरान क्रिया अनुष्ठित की जाती है। शाम के समय छोटे स्तर पर भोज का आयोजन किया जाता है। जनजाति कुड़मी जनसमुदाय इस भोज को कांध काठा भोज कहते हैं। बिना नमक की खिचड़ी पकायी जाती है एवं मृतक की आत्मा के उद्देश्य से भोग चढ़ायी जाती है।

श्राद्ध मृतात्मा का अन्तिम संस्कार माना जाता है। जबतक श्राद्ध क्रिया समाप्त नहीं होती है तबतक मृतक के परिवार तथा उनके सम्बंधित गोष्ठी (Trible) के लोग अशुद्ध माने जाते हैं। लोग शरीर पर तेल नहीं लगाते, स्त्रियाँ सिंदुर नहीं पहनतीं, पूजा अनुष्ठान में शामिल नहीं होते हैं। पूरे गांव में भी अशुद्धता मानी जाती है। सामुहिक पूजा–अर्चना पर्व–त्यौहार भी नहीं मनाया जाता है। ग्यारहवें दिन जनजाति कुड़मी लोक कथा में सृष्टि से सम्बंधित सभी देव – देवियों, गराम थान

(जाहिरा या सारना थान) एवं मृतक सह पुरखों के उद्देश्य से श्रद्धानुष्ठान में आराधना–अर्चना की जाती है। श्रद्धाभोज का भोग चढ़ाया जाता है। रकत पाड़ा नेग समापन करते हैं जिसमें मुरगी, बकरा (खस्सी) बलि दी जाती है। जनजाति कुड़मी के आदिवासी स्वशासन विधि के संगठित गांव के महतो या मांझी, देवउआन तथा पंच परिषद् के सदस्यों की निगराणी में मृतात्मा का श्रद्धा अनुष्ठान तथा कुटुम्ब परिजनों को भोज दिया जाता है। उसी दिन शाम को गुड़िहाथ क्रिया की जाती है। ज्ञात रहे दसवें दिन ही छाहेइर भीतरान के बाद विधवा महिला अपनी लौहे की मठिया कामान घाट के तालाब में विसर्जन कर आती है। इस तरह जनजाति कुड़मियों का मृत्यु संस्कार समापन होता है।

राजनैतिक जीवन

झारखण्ड की कुड़मी जनजाति का परम्परागत आदिम राजनैतिक जीवन संगठित रहा है। अपनी संगठित राजनैतिक व्यवस्था के माध्यम से कुड़मी जनजातिगत एकात्मता को टिकाए रखने में बल मिला है। प्रत्येक कुड़मी गांव में परम्परागत आदिवासी स्वशासन विधि के तहत एक पंचायत होता है जिसमें महतो या मांझी देउआन या परामानिक, गडैत, नेइआ तथा गांव के निवासी प्रति गोष्ठी (Tribe) से एक एक सदस्य मिलकर परम्परागत गांव पंचायत व्यवस्था होती है।

कुड़मी जनजाति में राजनैतिक जीवन इसी गांव पंचायत से प्रारम्भ होता है जिसका प्रधान महतो या मांझी कहलाता है। महतो की अनुपस्थिति में देउआन या परामानिक अध्यक्षता करता है। महतो या मांझी का कार्य विवाह सम्बंध स्थापित करने की अनुमति देना एवं पंचायत संगठन के सदस्यों की निगराणी में विवाह कार्य को सम्पादन करना तथा गांव के निवासियों के झगड़ों का निष्पादन करना, अपनी जनजाति के आचरण पर ध्यान देना एवं विवाह सम्बंधी समस्याओं

को सुलझाना है।

गोड़ैत गांव का संवादवाहक होता है। इसका कार्य महतो या मांझी, देउआन या परामानिक का आदेश पालन करना, जडुआही तथा उत्सव आदि में ग्रामवासियों को एकत्रित करना है।

नेइआ या देउरी गांव के पूजारी कहलाते हैं। धार्मिक अनुष्ठान तथा समारोह का सम्पादन कराना उनका कर्त्तव्य है। वे ग्रामीण जनसमुदाय की ओर से व्रत रखते हैं तथा देवी–देवताओं की पूजा अर्चना करते हैं।

परम्परागत गांव पंचायत में उपर्युक्त सभी पदाधिकारी जनजातीय व्यवस्थानुसार अपने अपने कार्यों का सम्पादन करते हैं। कुड़मी जनजाति की पंचायत परिचालन व्यवस्था का स्वरूप गणतान्त्रिक होता है। गावं के परिवार का विभाजन सम्पत्ति को बंटवारा, विवाह, विवाद, तलाक या छाड़बेड़, अत्याचार, बलात्कार, जीवन विवाद, निषिद्ध यौन सम्बंधन, भूत या डायन का विवाद, पालतु पशुओं से फसलों की रक्षा संबंधी विवाद, परम्परागत गांव पंचायत में रखे जाते हैं। जिसका निराकरण महतो या मांझी के नेतृत्व में गांव परिषद अथवा गांव की सोलह आना द्वारा किया जाता है।

आदिवासी स्वशासन विधिगत महतो या मांझी, देउआन या परामानिक आदि का चुनाव प्रथागत रूप से गांव स्थापना के समय ही किया गया था। बाद में उक्त पद वंशानुगत पिता के बड़े पुत्र को प्राप्त होने लगे। पहले महतो या मांझी एवं नेइआ को लगान मुक्त जमीन दी गयी थी। महतो की महतइ जमीन या मांझी की मांझीयस जमीन एवं नेइआ को नेइआली या नेइअड़ी जमीन दी गयी गई थी। वर्तमान में भी नेइआ खतियानी बे–लगान जमीन भोग दखल कर रहे हैं।

जनजाति कुडमियों की निवास भूमि दस या बारह गांवों को मिलाकर पड़हा–बाइसी–चाटा बना है। जिसे बाइसी परगना भी कहा जाता है। कुड़माली बाइसी शब्द का अर्थ सभा होता है। पड़हा

–बाइसी–चाटा या बाइसी परगना के प्रधान को परगनैत कहा जाता है। परगनैत के अलावे परगना देउआन या परगना परामानिक एवं पटुअई बाइसी परगना के पदाधिकारी होते हैं। बाइसी की अध्यक्षता परगनैत करते हैं। विभिन्न गांव पंचायतों के सभी महतो या माझी देउआन या परामानिक, गड़ैत एवं नेइआ बाइसी चाटा के सदस्य होते हैं। परगनैत का चुनाव महतो में से होता है। ग्रमसभा के अभिमांसित विषयों को पड़हा–बाइसी–चाटा या बाइसी परगना सभा में रखा जाता है। जनजाति कुड़मी के आदिवासी स्वशासन विधि के प्रतिकुल आचरण करने वालों को बाइसी परगना के निर्णयानुसार सामाजिक दण्ड दिया जाता है। विशेष परिस्थिति में समाज बहिष्कार किया जाता है। बिटलाहा या सामाजिक बहिष्कार प्रक्रिया को सुनिश्चित करने में परगनैत की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

परम्परागत आदिवासी स्वशासन विधि व्यवस्था में सर्वोच्च राजनैतिक संगठन क्षेत्र को देश कहा जाता है एवं सर्वोच्च अधिकारी को देश मोड़ल। जनजाति कुड़मी कबिला की परम्परागत आदिम निवास भूमि को उक्त स्वशासन विधि व्यवस्था के तहत सूचारू परिचालन हेतु पुरखों ने "शिख–शिखर–नागपुर–आठारों परगना" इन चार देशों में विभक्त किया है। देशों के अन्तर्गत परगनैत देश मोड़ली बाइसी के सदस्य होते हैं। जनजाति कुड़मी कबिला की आदिवासी स्वशासन विधि निर्माण, विधि में परिमार्जन–परिवर्धन देश बाइसी में ही होता है। इस सर्वोच्च बाइसी में परगना बाइसी के अभिमांसित विषयों की अन्तिम अपील और सुनवाई होती है। 3/4 देश मोड़लों की संयुक्त राय को बिटलाहा या समाजिक बहिष्कारों के क्षमादान का विशेषाधिकार है।

मुगल तथा अंग्रेजी शासन के दौरान जमींदारी प्रथा के कारण जनजाति कुड़मी के परम्परागत राजनैतिक संगठन पर प्रतिकुल प्रभाव पड़ा, आदिवासी स्वशासन पर काफी बदलाव आया है। महतो या मांझी

परगनैत तथा देश मोड़ल को छिटपुट वृत्ति देकर अंग्रेजी सरकार का वफादार बना दिया गया। परगनैत के कार्यक्षेत्रों में अंग्रेजी शासन की दखलांदाजी होने लगी। सामाजिक बहिष्कार या बिटलाहा के अवसर पर कानून व्यवस्था बनाए रखने के लिए दण्डाधिकारी प्रतिनियुक्त किये जाने लगे।

ईसाई मिशनरियों के द्वारा अन्य जनजातियों की तरह जनजाति कुड़मी के परम्परागत राजनैतिक संगठन के विघटन को बल मिला।

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद पंचायती राज व्यवस्था लागु किये जाने के कारण अन्यान्य जनजातियों की तरह जनजाति कुड़मियों के गांवों में भी पंचायतों की स्थापना की गई। बहुमत से मुखिया तथा सरपंच का चुनाव किया जाने लगा। इससे भी परम्परागत स्वशासन में ह्रास होने लगा, लोकतांत्रिक प्रक्रिया तथा शिक्षा के प्रसार के कारण अनान्य सभी जनजातियों की तरह कुड़मी जनजाति की परम्परागत शक्ति संरचना में प्रदत्त प्रस्थिति के स्थान पर अर्जित प्रस्थिति का महत्व बढ़ने लगा। सरकारी वैधानिक न्यायालयों की स्थापना के कारण जनजातियों के परम्परागत पंचायतों का स्वरूप उपर से नीचे तक कमजोर पड़ने लगा।

लेकिन अंग्रेज सरकार के आदिवासी स्वशासन पर हस्तक्षेप को जनजाति लोगों स्वीकारा नहीं। विद्रोह का झण्डा खड़ा किया। हेंसला परगना के रघुनाथ परगनैत, बुली महतो आदि ने अंग्रेजी शासन व्यवस्था को लागु नहीं होने देने का निश्चय किया। जमींदारी व्यवस्था, पुलिस स्टेशन, न्यायालय आदि की स्थापना से व्यय भार आदिम निवासी जनसाधारण पर पड़ने लगा। मालगुजारी में वृद्धि, नये करों की वसुली होने लगी। जन साधारण भड़क उठे, हिंसात्मक आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, विद्रोह को बिगुल फुंका गया। इतिहास में इस विद्रोह को चुहाड़ विद्रोह कहा गया है। अंग्रेजी हुकुमत ने विद्रोह को कुचलने के लिए कोई कसर नहीं छोड़ा। रघुनाथ परगनैत आदि विद्रोहीगण

शहीद हुए। फुट डालो और शासन करो की नीति अपना कर परगनैत–महतो–मांझी लोगों को जमीनदार आदि वृत्ति देकर अपना वफादार बना लिया। फिर भी विद्रोह रूका नहीं अंग्रेजी सरकार जनजाति बहुल आदिम निवास भूमि को खण्ड–विखण्ड कर विशेष प्रशासकों के अधीन कर कठोरता से शासन चलाने लगी। फिर भी जनजातीय स्वशासन व्यवस्था पूर्णतः मिटी नहीं। सामाजिक एवं सांस्कृतिक अस्तित्व बरकरार है। हर साल 12 बैशाख को बाइसी परगने में रघुनाथ परगनैत की पूण्य तिथि मनायी जाती है।

जनजातियों की आदिम निवास भूमि आदिवासी बहुल वृहत झारखण्ड क्षेत्र में, अंग्रेज सरकार ने अपने सशक्त प्रशासन के लिए कौशल, छल, छद्म, चतुराई से भेद नीति अपनाकर, कुछेक स्वार्थी वफादारों को हथकंडा बनाकर 1931 ई0 की आदिम सुमारी में बगैर किसी नोटिफिकेसन द्वारा जनजाति कुड़मियों को जनजाति सूची से बहिर्भूत किया है। किन्तु उसी जनगणना 1931 ई0 में ही मुण्डा, सांथाल, कुडुख (उरांव), खड़िया, हो आदि के साथ जनजाति कुडमियों को जनगणना पदाधिकारी अपनी रिपोर्ट में अति आदिम अनजाति (Primitive Tribes) कहकर चिन्हित किया है।

सुविधावादियों के कुटिल चक्रान्त से जनजाति कुड़मी जनसमुदाय जनजाति अनुसूची से डि–लिस्टेड होने के फलस्वरूप कुड़मी जनजाती राजनैतिक प्रेक्षपाट पर विधानसभा तथा संसदीय क्षेत्रों में प्रतिनिधि स्वरूप सुरक्षित व्यवस्था से वंचित हैं। यद्यपि 8 दिसम्बर, 1931 ई0 के बिहार एवं उड़िसा राज्य सरकार की नोटिफीकेसन नं0 3563 जे0 के0तहतजनजातीय प्रथायिक विधि के अनुसार आदिवासी की उत्तराधिकार संबंधी सभी सुयोग–सुविधायें आजतक उपभोग करते आ रहे हैं। विस्तृत विवरण अन्तिम अध्याय में दिया गया है।

उरांव या कुडुख जनजीवन

झारखण्ड क्षेत्र में आदिम जाति के जिन आदिम निवासियों ने सर्वप्रथम जंगलों को साफकर कृषि योग्य भूमि तैयार की और गांव बसाया उनमें उरांव या कुडुख जनजाति भी एक है। जनजाति कुडमी की तरह उरांव जनजाति में भी गांव को सर्वप्रथम बसाने वाला महतो कहलाता है। ये गांव के प्रधान होते हैं। इनपर गांव की पूरी जिम्मेदारी रहती है। पहले गांव की जमीन पर इनका अधिकार रहता था दूसरों को अपनी इच्छानुसार गांव में बसाते थे। पूजा पाठ इन्हीं के द्वारा सम्पन्न होती थी। कई पीढ़ियों के बीत जाने पर गांव या सामाज पर पाहन–पूजारी नियुक्त कर सामुहिक पूजा की जाने लगी जो अब भी जारी है।

उरांव जनजाति के लोग खुद को कुडुख कहते हैं। जिसका अर्थ द्रविड़ भाषा में 'मनुष्य' है। फादरडेहर के अनुसार यह जाति कर्नाटक की तरफ से आकर इन स्थानों में फलीफुली है।

वेश भूषा तथा रहन सहन– उरांव लोगों का पहनावा बिल्कुल सीधा–सादा है। पुरूष केवल पांच–छः गज लम्बा एवं एक फुट चौड़ा कोपिन (करिया) कपड़ा धारण करते हैं। उपर से चादर लपेटते हैं। अमीर लोग धोती कुर्ता पहनते हैं। ये लोग चादर की सफेद पगड़ी भी पहनते हैं। समुदाय के निर्धन केवल लंगोटी पहनते हैं। लड़कियां पुतली (हरी) एवं महिलाएं नांहगा (किचरो) देह पर लपेटती हैं। त्यौहारों पर "खनरिया किचरो" नामक वस्त्र पहनती हैं। शारीरिक सौन्दर्य बढ़ाने के लिए तरह–तरह के पीतल एवं तांबे के आभूषण पहनती हैं। हाथों पर, छाती पर, पैरों पर गोदने का निशान बनाती हैं। सम्पन्न परिवार की स्त्रीयाँ चांदी निर्मित बाजु, बाला, चुडियाँ, हंसली, चन्द्रहार (चन्द्रमाला) पहनती हैं।

आधुनिक परिवेश में उक्त सभी पोशाक परिच्छत विस्थापित हो चले हैं। प्रायः धोती, कुर्ता, शुट, सर्ट, पेन्ट, जुते, मोजे पहनने लगे हैं। धनी परिवार के लोग सोने के आभूषण पहनते हैं।

सामाजिक अवस्था – उरांव लोगों की सामाजिक अवस्था गावों पर

आश्रित है। गांव में तीन मुख्य स्वशासनिक पद होते हैं –
(क) महतो – गांव संगठन में महतो प्रधान अधिकारी होते हैं। गांव संगठन में आदिम परम्परागत स्वशासन व्यवस्था में महतो की भूमिका ही सर्वोपरि होती है। सभी कार्यों की देख–रेख महतो तथा उनके सहायकों द्वारा ही होती है। जनजाति उरांव जनसमुदाय में परिवारिक विभाजन जमीन का आपसी बंटवारा, विवाह की रश्म–रीवाज को सम्पन्न कराना, अपनी जनजाति में ग्रामीण शान्ति कायम रखना आदि कार्यों में महतो की भूमिका मुख्य होती है।
(ख) पाहन – पाहन धार्मिक कार्यों का कर्त्ता होता है। ये ही सारना स्थल में अधिष्ठित सभी देवी देवताओं के पुजारी होते हैं। उरांव जनजाति की और से सामुहिक व्रत रखते हैं। उरांव या कुडुख जनजाति के परब–त्यौहार में पाहन को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी पड़ती है।

(ग) पनभरा – ये पहान के सहायक होते हैं। धार्मिक अनुष्ठान, सारणा पूजा, परब त्यौहारों के अवसर पर आवश्यक सामग्रियाँ पाहन को मुहैया करते हैं।

अनान्य जनजातियों का तरह उरांव जनजाति में धनी वर्ग, मध्यम वर्ग एवं गरीब वर्ग के लोग समाज में निवास करते हैं। स्त्रियों की मर्यादा की अक्षुण्गता के लिए उरांव या कुडुख जनजाति के लोग हमेशा जागरूक रहते हैं।

जन्म संस्कार

उरांव स्त्री पुरूषों को गर्भावस्था के बारे में काफी विस्तृत और गुढ़ जानकारी रहती है। गर्भस्थ शिशु की जानकारी (लड़का या लड़की) कुछेक लक्षणों से हासिल कर लेते हैं। उरांव औरतों में यह खुबी है कि वे गर्भावस्था में भी काफी श्रम से काम करती हैं और उन्हें कोई कष्ट नहीं होता है। अन्तिम समय तक वे घर के कामों में जुटी रहती हैं। प्रशव के समय मदद के लिए कुसरैन और अनुभवी बुढ़ी औरतें आ जुटती हैं। बच्चे के जन्म के बाद बच्चा अपनी माँ के कुड़्डा तप्पा (नाभि और नाड़ी) के साथ जुड़ा रहता है। कुसरैन कुड़्डा और तप्पा (नाभि और नाड़ी) को तांबे के सिक्के पर रखकर चाकु या खपड़े

के टुकड़े से काट देती है। प्रसव के पूर्व की भांति प्रसव के बाद भी स्त्री को बहुत सतर्क रहना पड़ता है। प्रसव होने के तृतीय दिवस में प्रसुति महिला को कुरथी का पानी पिलाया जाता है तथा कुरथी सिद्ध खिलाया जाता है। पंचम दिवस में पांस बुड़ही निकाला जाता है। नौ दिन में 'नरता' क्रिया अनुष्ठित होती है। उसके बाद प्रसुति माँ का शुद्धीकरण, बच्चे का शुद्धी करण, मुण्डन, बच्चे का नामकरण आदि जन्म संस्कार क्रिया की जाती है।

शिक्षा–दीक्षा – 8 वर्ष की उम्र के बाद बच्चों में सभी चीजों के गुणों को सीखने की क्षमता आ जाती है। 12 वर्ष की उम्र बीतने पर बच्चे किशोरावस्था को प्राप्त कर जाते हैं। उनका शरीर बाहरी वातावरण की चीजों से प्रभावित होता है। वे देखते–सुनते और काफी मौन रहते हैं। उनके गले से मोटी आवाज निकलती है। इस अवस्था को किशोरावस्था कहते हैं। किशोरावस्था में माता–पिता अपने बच्चों को परिवार के परम्परागत प्रत्येक प्रकार के काम–काज की शिक्षा देते हैं, जो उनके लिए सम्भव होते हैं। लड़के मर्दों के सभी काम जैसे–हल जोतना, बीज बोना, कुदाल चलाना, भार ढोना, तरह–तरह के सामान बनाना आदि तथा खेती–गृहस्थी कार्य करते हैं। ठीक इसी प्रकार लड़कियाँ भी गृहस्थी और घरेलू कार्यों में हाथ बंटाती हैं। वे झाड़ु, चटाई बनाना, सिलाई करना आदि गुण परिवार में ही सीखती हैं। इस तरह से वेघरेलू कार्य में निपुन हो जाती हैं।

धुमकुड़िया में सामाजिक प्रशिक्षण की शिक्षा प्राप्ति के लिए माता–पिता द्वारा भेजे जाते हैं। इस धुमकुड़िया को "जोंख–एड़पा" भी कहते हैं। इस जोंख–एड़पा में परिवारिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि तथा गाने बजाने नाच, खेल तथा जीवन के सभी पक्षों की शिक्षा दी जाती है। सिक्का–बैठाना, जुड़ी–चुट्टी रखना, गोदना और मुलुर खोंपा बनाना आदि क्रिया शिक्षा–दीक्षा के सुअवसर में ही सम्पन्न किया जाता है।

ईसाई मिशनरीज के प्रभाव में इनके रहन–सहन शिक्षा–दीक्षा में भारी परिवर्तन एवं विकास हुआ। उच्च शिक्षा में शिक्षित एवं उँचे ओहदे में नियुक्ति के फलस्वरूप इनमें गुणात्मक विकास हुआ तथा आर्थिक स्थिति में भी मजबुती आयी है।

स्वाधीनोत्तर भारत में केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकार की सरकारी शिक्षा व्यवस्था में भी इनके लिए अनुकुल परिवेश बना हुआ है।

विवाह संस्कार – उरांव जनजाति में अनान्य जनजाति की तरह ही अपने गोत्र (Tribe) से बाहर विवाह करने की प्रथा है। इनमें टोटमवाद की अवधारणा प्रमुख है। इसी के आधार पर सामाजिक संबंध निर्धारित होते हैं। विवाह की रस्म रिवाज प्रारम्भ से अन्त तक जनजातीय संस्कृति से पूरी की जाती है। लड़की खोज की योजना, सगुन करने की विधि, अगुआ या बिचवाई की व्यवस्था डंडा खेरना (लाठी खोंसना), खोरी तेंगेरना (परिवारिक खोज पुछार लेना), डंडा किर्त्तआना (लाठी लौटाना)। इसके बाद लड़का या लड़की की अच्छी तरह ओर जाँच किया जाता है। जाँच के लिए सन्नि पाही (छोटा मेहमान), कोहाँ पाही (बडा मेहमान), इस तरह जाँच के बाद तेल्लों दाम (डाली डिबा गिनना), पेल्लो पाही (लड़की मंगनी), उडडु किर्त्तआना (डलिया लौटाना), शादी मंगनी, इन सारी रस्मों के पुरा होने के बाद विवाह अनुष्ठान अनुष्ठित होती है। लड़की की विदाई (विवाह) तीन प्रकार के होते हैं – (**i**) चर विवाह (**ii**) पहुँचा देना, (**iii**) सखरी विवाह। इस तरह के विवाह को शादी तय होने के दिन ही किया जाता है।

(i) चर विवाह – इस प्रकार के में माता–पिता अपनी बेटी को अपने ही घर में शादी देकर विदा करते हैं। अन्यान्य जनजातियों की तरह इस विवाह में लड़के की और से बरात आती है। लड़की का पिता शादी में होने वाले खर्च का भार उठाते हैं। कुड़मी जनजाति में इसे सादा बिहा कहते हैं।

(ii) पहुँचा देना – इस विवाह में लड़की को लड़के के घर पहुँचा

दिया जाता है और वहीं उसकी शादी की रस्म पूरी होती है। क्योंकि लड़की का परिवार विवाह में होनेवाले खर्च को वहन नहीं कर सकता है। इसमें लड़की की ओर से बारात आती है कुड़मी जनजाति में इस तरह के विवाह को 'बंद कड़ि' बिहा एवं सॉंथाल जनजाति में इस तरह के विवाह को टुनकी दिपील बापला कहते हैं।

(ii) सखरी विवाह – वह परिवार जो बारातियों को कुछ खिला–पिला नहीं सकता और लड़का के घर से ही बारातों का खर्च ले जाया जाता है। तत्पश्चात् लड़का लड़की से की विवाह कर विदा कर अपने घर ले जाता है, जिसे सखरी विवाह कहलाता है। जनजाति कुड़मी इस विवाह को दु–चुल्हा जरी बिहा कहते हैं।

(iv) सांघाइ विवाह – इस तरह की शादी में विधुर पुरूष के साथ विधवा औरत का विवाह होता है। जनजाति कुड़मी में इसे 'सांघा' विवाह कहते हैं।

(v) भागा–भागी या फिरारी शादी – इस प्रकार का विवाह पारिवारिक और सामाजिक दस्तुरों के मुताबिक शादी नहीं होता है। सिर्फ लड़का–लड़की की आपसी सहमति होती है और दोनों मिलकर घर बसाते हैं। इसे उरांव जनजाति में भागा–भागी या फिरारी शादी कहते हैं। उरांव जनजाति में इसको सामाजिक मान्यता दी जाती है। कुड़मी जनजाति में इस तरह की शादी को भगेडु बिहा कहा जाता है। सांथाली प्रथा में इसे बहादुर बापला कहते हैं।

(vi) ढुकु विवाह – किसी लड़की के साथ किसी लड़के का प्रेम हो जाता है और आपस में विवाह करने की इच्छा प्रकट करते हैं, लेकिन किसी कारणवश सामाजिक दस्तुरों में शादी नहीं हो पाती है या शादी में विलम्ब होता है तो लड़की अपने परिवार से पूछे बगैर लड़के के घर चली जाती है और लड़का उसे रख लेता है। इस प्रकार के विवाह को 'ढुकु' विवाह कहते हैं। इस प्रकार की शादी सामाजिक दस्तुरों में अवैध है। फिर भी समाज को इस शादी की मान्यता देनी पड़ती है। जनजाति कुड़मी में इस तरह की शादी को ढुकनि बिहा कहते हैं।

परब – त्यौहार

उरांव जनजाति ने प्रति की स्वाभाविक देन तथा रहस्यमय कार्य को देखकर प्रति के साथ ही अपना जीवन एवं पर्व–त्यौहारों को जोड़ दिया है। उनका मानना है कि शरीर तथा कपड़ों में फूलों का रंग पड़े बिना फूल–फल खाना, नये भोजन परोसना और नये वर्ष में प्रवेश करना अशुभ है। इसलिए फगुआ उत्सव से इनका त्यौहार प्रारम्भ होता है।

1) फगुआ – फगुआ फूलों का परब है। साल तथा अन्य विभिन्न प्रकार के फूल एकत्रित कर उनके रस को निचोड़कर विभिन्न प्रकार के रंग बनाए जाते हैं एवं फागुन पूर्णिमा में इस परब को धुमधाम से मनाया जाता है। चैत माह के प्रथम दिन से इनका नये वर्ष का शुभारम्भ होता है।

2) शिकार (सेंदरा) – यह उत्सव उरावों के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। पारिवारिक जीवन के कार्य क्षेत्र एवं आत्मरक्षा प्रशिक्षण से सम्बंधित है। यह विद्या उनके आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन से जुड़ा हुआ है। शिकार (सेंदरा) को तीन भागों में वर्गीकृत किया जाता है – फागु शिकार, विसु शिकार और जेठ शिकार। इन शिकारों के अलावे जनी शिकार, राजाओं का शिकार, मछली शिकार तथा शिकरा–शिकार (छेछरा बेचना) भी हैं। शिकरा एक पक्षी होता है जिसके द्वारा शिकार खेला जाता है। यह उत्सव–उत्साह के साथ मनाया जाता है, जो उरावों के जन–जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

3) सरहुल त्यौहार – आदिवासी उरांव समुदाय सरहुल त्यौहार को चैत–बैशाख में मनाते हैं। कहीं–कहीं सरहुल पूजा फगुआ में, कहीं कहीं बाद में भी की जाती है। गांव के 'महतो' पाहन और पंच लोग बैठकर त्यौहार का दिन निर्धारित करते हैं। यह त्यौहार दो दिनों का होता है। सरहुल वह त्यौहार है जिसमें धरती–प्रति का विवाहोत्सव मनाया जाता है।

धरती और प्रति नर–नारी सदृश्य है। यह एक रहस्यमय तथ्य है कि ये नर–नारी के रूप में विभिन्न चीजों का जन्म देकर उनका पालन–पोषण करते हैं जो मानव जीवन के लिए ईश्वरीय वरदान होते हैं। जिस प्रकार परिवार में एक बच्चे का जन्म खुशहाली से भर देता है, ठीक उसी प्रकार धरती–प्रति की नयी नयी चीजों से लोगों में अति उमंग समा जाता है।

जब साल के पेंड़ फूलों से लद जाते हैं तो पाहन–पाहानिन को साक्ष्य स्वरूप विवाह की एक रस्म पूरी करनी पड़ती है। गांव की और से विशेष जिम्मेदारी निभानी पड़ती है। अर्थात उस दिन गांव के देवी–भूतों के लिए विशेष सेवा, दान अर्पित की जाती है। वर्षा हेतु पाहन के सिर पर बहुत सारा पानी उड़ेला जाता है। प्रसाद के रूप में साल–फूलों के गुच्छे पाहन घर–घर जाकर वितरण करते हैं। इस तरह से भारी धूमधाम से सरहुल परब–उत्सव मनाया जाता है।

4) गोमहा पुनी त्यौहार – कई माह से खेतों में कार्य करने, भूख–प्यास, धूप–जाड़ा, आंधी–हवा, वर्षा–पानी आदि सहन करने के पश्चात् लोगों को पहली बार नया अन्न मिलता है। आदिवासियों को जब भी नये अन्न की प्राप्ति होती है, परमेश्वर को चढ़ाने के बाद ही खाते हैं। कितने ही दिन दुःख–भुख शारीरिक परिश्रम करने के बाद, अशान्ति का वातावरण, उदास मन इत्यादि सहने के बाद सहानुभूति प्राप्त होती है। अतः इस त्यौहार का नाम गोमहा रखा गया। गोम्हा अर्थात गोम–गोमो (भीतर ही भीतर), 'मन गुमान' में रहना।

5) करम त्यौहार – करम त्यौहार उरांव जनजाति के परिवार तथा समाज में धर्म और संस्कृति के विधि विधान में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस परब में सन्तान प्राप्ति के प्रतीक बीजों का अंकुरण किया जाता है।

जिस डाली में अंकुरण की क्रिया की जाती है उस डाली (टोकरी) को करम डाला कहा जाता है। इसे जाउआ डाली भी कहा जाता है। सुबह–शाम लड़कियाँ उक्त डाला को नृत्य और गीतों से बढ़ाती हैं, देख–भाल करती है, तरह–तरह नियम–पालन करती हैं, व्रत रखती हैं। विधि विधान के साथ करम पेड़ की डाली काटकर नियमतः आखड़ा में गाड़ते हैं, करम व्रत रखनेवाली लड़कियाँ (नयी विवाहित सह) करम पूजती हैं। करम डाली विसर्जन किया जाता है। इसमें पाहन की विशेष भूमिका रहती है।

6) नयाखानी (तुस्गो) त्यौहार – साधारणतः यह त्यौहार सितम्बर माह के अन्तिम पखवारे से अक्टूबर माह के प्रथम पखवारे में धान पक जाने से किसी दिन मनाया जाता है। धान के पूर्ण रूप से पकने के बाद गांव में बैठक होती है और त्यौहार मनाने के लिए दिन तय होता है। इसके बाद अपने–अपने परिवार में अथवा अपनी गोष्ठी भर में अथवा गांव भर में मनाया जाता है। तुस्गो का अर्थ है–तुस्सना अर्थात आलना अर्थात पेट भर जाने के बाद पुनः खाने के लिए रूची न लेना। उरांव से ही 'डिडिरका' या ''कुल उड़चक्का'' कहा जाता है। अर्थात गोम्हा के पूर्व भूख थी और अब कुछ खा लिया गया। यो तुस्गो का अर्थ है नया खाना जिससे प्रायः सभी आदिवासी या जनजाति परिचित हैं। यह परब नया अन्न खाने के लिए मनाया जाता है। साथ ही परमेश्वर एवं मृत पूर्वजों एवं परिवार के प्रति कृतज्ञता प्रकट की जाती है। क्योंकि उन्होंने ही जमीन जायदाद आदि दिया हैं। अतः खाना–पानी आदि सर्वप्रथम परमेश्वर को तथा पूर्वजों को चढ़ाया जाता है एवं आगे धन प्राप्ति हेतु प्रार्थना की जाती है।

7) सोहराई त्यौहार – कुडुख या उरांव भाषा में सोहरारना शब्द का अर्थ लदा हुआ, भरा हुआ, झबरना है। आदिवासी सोहराई त्यौहार का अर्थ पेंड़ – पौधों का फूल – फलों से भरा होना है। जब किसान देखता है कि अन्न

–फसल पकने पर है, तो परिवार में खुशहाली समा जाती है। अतः इन्हें देखकर धन्यवाद अर्पण के लिए यह त्यौहार कार्तिक अमावस्या के दिन मनाया जाता है। पुरूष के लिए अपनी स्त्री लक्ष्मी समझी जाती है मनुष्य के लिए अन्न–धन, जीव–जन्तु, यहाँ तक की निर्जीव भी उनकी लक्ष्मी समझी जाती है। इस प्रकार षकों की सेवा मे पशु अधिक मदद करते हैं। जिसके कारण उनका आर्थिक जीवन पशुओं पर ही आधारित माना जाता है। अतः प्राप्त किए गए धनों तथा मवेशियों की रक्षा के लिए परमेश्वर को धन्यवाद देने तथा अर्जी कर और गोरया देवता को मनाने के लिए बलि चढ़ाया जाता है।

यदि किसी के घर में काड़ा–भैस है और गोरया भूत पर भक्ति है तब उसके लिए सुअर का बलि चढ़ाया जाता है। जंगल–पहाड़ों में रक्षा के लिए, बीमारियों से रक्षा के लिए, वंश वृद्धि के लिए अनान्य देव–देवियों के नाम पर रंग–बिरंगे चेंगना–चेंगनी (मुर्गा–मुर्गी) की बलि दी जाती है।

कार्तिक अमावस्या के एक सप्ताह पूर्व से घर आंगन साफ सुथरा किया जाता है। मवेशियों को साफ–सुथरा किया जाता है। त्यौहार के दिन गोहाल घर में दीया जलायी जाती है। हल्दी पानी छिड़का जाता है। मवेशियों को माला पहनाया जाता है तथा सजाया जाता है और पैर धोया जाता है। कुदृष्टि से बचने के लिए मवेशियों के देह को बांधा जाता है। रात भर गाजा–बाजा के साथ सोहराई गीत गाकर घर–घर मवेशियों को जगाया जाता है। धूम–धाम से इस त्यौहार को मनाया जाता है।

7) माघ त्यौहार – इस त्यौहार को जातरा त्यौहार भी कहा जाता है। उरांव जनजाति के लिए यह त्यौहार सबसे प्रमुख है। माघ महिना के पहले दिन जो जतरा दिन कहा जाता है इस परब को तीन दिन पहले से चॉउड़ी – बांउड़ी – मकर के रूप में उमंग तथा धुमधाम से मनाया जाता है। चाउड़ी के दिन शिकार के सरंजाम की तैयारी करते हैं। बांउड़ी के दिन सूर्योदय के पहले

ही शिकार के लिए निकल जाते हैं। शिकारों में मुसा (चुहा) शिकार प्रमुख है। इसके अलावे चिड़िया शिकार भी किया जाता है। इसके बाद वे दोपहर तक घर लौटते हैं। मुसा तथा चिडियों का छेछरा बनाते हैं। आरवा चावल की गुंडी में हल्दी, मिर्च, तेल के साथ छेछरा मिलाकर पत्तों से चापड़ा बनाते हैं। अग्र (पहला) भाग मृत पूर्वजों या पुरखों के नाम हंडिया के साथ अर्पन करते हैं तत्पश्चात् आनन्दित और उल्लसित होकर भर पेट भोजन करते हैं। हंड़िया पीते हैं।

मकर के दिन आनन्द उत्साह के साथ सूर्योदय के पहले नदी, झरना या तालाब जाकर मकर स्नान करते हैं। गीत गाते हैं और दिन भर खुशियाँ मनाते हैं।

जातरा यानि पहला माघ को सुबह होते ही लड़के–लड़कियाँ शोरगुल मचाते हैं। सामर्थ्य के अनुसार नये वस्त्र परिधान पहनते हैं। जातरा दिन को शुभदिन माना जाता है लोग तरह तरह के शुभकर्मों की शुरूआत करते हैं। इस अवसर पर मांस, मछली सह भर पेट भोजन करते हैं। क्षेत्र के विभिन्न मेले में उल्लास के साथ मेला देखने जाते हैं।

धार्मिक जीवन

कुडुख या उरांव जनजाति के जनसमुह प्रतिपूजक हैं। देवी, देवता, भूतों की पूजा अर्चना बैगा करते हैं जिन्हें पाहन भी कहा जाता है। ये धर्मेश को श्रेष्ठदेव मानते हैं। उन्हें परमेश्वर कहते हैं। इस जनजाति के लोग बाल बच्चों की संख्या बढ़ाने तथा शिकार में अधिक सफलता प्राप्त करने के लिए अनेक क्रियायें तथा जादु–टोना किया करते हैं। भूत–प्रेत तथा चुड़ैलों आदि पर भी इन लोगों का विश्वास है। ये झाड़–फूँक तथा जंगली जड़ी–बुटियों की निर्मित औषधि व्यवहार करते हैं। चण्डी नामक देवता शिकार और युद्ध का अधिष्ठाता होता है। इनका एक अन्य देवता दरहा है जिनका निवास शाल वृक्ष, गुहा या पत्थर तथा डांड़ी आदि में माना जाता है। इनके अलावा डंगरीनाद, बाड़ंदा, दरहा देशवली, महादानिया, चोरदेंबा या पुगरीभूत, दुआरसिनि, घाटसिनि,

डैरबिंगा, चतुर्सीमानी, डांड़ी दरहा, पहाड़ दरहा, पारिवारिक खुंट–भूत, एचराएल, जोढा, सातबहिनी, पांचबहिनी, चुड़ैल आदि पर विश्वास करते हैं एवं पूजा अर्चना करते हैं।

जब मौजे में एक ही पूजारी सामुहिक पूजा करने लगे तब उन्हें पाहन या नैगस कहा जाने लगा। जहाँ पूजार्चना की जाती है उस स्थल को पवित्र सारना (जाहिरा) कहते हैं। लोग वहाँ की लकड़ी, पत्ता आदि नहीं उठाते हैं। सारना या जाहिरा स्थल में न तो मूर्तिपूजा होती है न मंदिर निर्माण की विधि है। आदिवासी प्रति पूजक हैं। पुरखों की आत्माओं की पूजा आराधना की जाती है। इनका धर्म आदि धर्म (सारना या जाहिरा) है।

इन्होंने भारी संख्या में ईसाई धर्म को इसी कारण स्वीकार किया है कि इसके बिना उन्हें अपनी सन्तानों को पढ़ाने का कोई साधन नहीं था वर्तमान में इन लोगों की प्रारम्भिक एवं उच्च शिक्षा में प्रगति हो रही है।

मृत्यु संस्कार

जब किसी मानव की मृत्यु की घड़ी पहुंचती है, तो स्थिति बड़ी नाजुक होती है। असहनीय एवं अकथनीय दुःख–पीड़ा होती है। सम्बंधियों के आ जाने से मृत्यु की निश्चितता पर मृत्यु–शय्या पर पड़े व्यक्ति को अन्तिम विदाई देने के लिए सभी तैयार हो जाते हैं। जब उनके प्राण–पखेडु निकल जाते हैं शरीर की नाड़ी की गति बंद हो जाती है और शरीर ठण्डा पड़ जाता है।

मरणोपरांत गांव तथा अन्य सभी रिश्तेदारों को भी इसकी सूचना दी जाती है। सबके पहुँच जाने पर परिवार में निर्णय लिया जाता है कि मृत शरीर के क्रियाकर्म की कौन सी विधि अपनायी जाए। दफनाने की विधि या शव दाह की विधि।

डउांव जनजाति में मृत शरीर अधिकांशतः दफनाये जाते हैं। मृत शरीर को तेल और हल्दी लगाया जाता है। मृतक अगर विवाहिता

स्त्री हो तो उसका स्वामी जीवित हो तो स्वामी द्वारा मृतक की मांग पर तीन टीका सिंदुर पहनाया जाता है। अगर मृतक विवाहित पुरूष व्यक्ति हो तो मृतक की स्त्री अपने हाथों की चुड़ियाँ तोड़कर शव की खटिया में रख देती है तथा मृतक के कापार पर तीन टीका सिंदुर लगा देती है। अन्तिम संस्कार के लिए शमशान ले जाया जाता है।

दफनाने की विधि – कब्र को उत्तर और दक्षिण दिशा में खोदना होता है और मिट्टी पूरब तथा पश्चिम रखी जाती है। शव को गढ्ढे के चारों ओर तीन बार घुमाकर मिट्टी पर रखा जाता है। कब्र में उतारने के पूर्व हल्दी–तेल लगाते हैं, भात खिलाते हैं, हंड़िया या दारू मुंह में चुलाते हुए कहते हैं "जीवित अवस्था में हंड़िया–दारू की मांग करता था, आज फलना दे रहा है–क्रोध न करना"। उसके बाद शव को कफन ढंक कर कब्र में उतार देते हैं।

शव को कब्र में उतारने के बाद पंच लोग आग जलाते हैं तथा आग से खेर घास जलाकर परिवार और रिश्तेदारों में से कोई आदमी मुर्दे के पैर की ओर खड़े होकर दक्षिण मुंह करके जलती घांस पीछे कब्र में फैंकते हुए कहते हैं – "लो तेरे दहन के लिए आग दे रहे हैं, आज से तेरा मुंह नहीं देखेंगे, इसलिए आग दे रहे है, फिर लौट कर न आना"।

कब्र में सर्वप्रथम परिवार वाले मिट्टी देते हैं। मिट्टी देते समय सिर के उपर चीरों घास खड़ा किया जाता है। जैसे जैसे मिट्टी भरता जाता है वैसे वैसे चीरों घास उपर उठाते जाते हैं जिससे एक छेद बन जाता है और उसी छेद को उसकी आत्मा के आने जाने का रास्ता माना जाता है। इसके बाद घड़े को छेद करके उसमें पानी, दतवन, तेल कब्र के सिर की ओर रखते हैं। धान कब्र के उपर छिंटा जाता है।

कब्रस्थल जाने के समय जितने दतवन घड़े में रखे जाते है उतने दिनों के बाद गमी किया जाता है।

शव दहन विधि – साधारनतः शवदहन क्रिया मृत विवाहितों का होता है अविवाहितों के लिए नहीं। शवदहन के लिए शमशान तक शव ले जाने की विधि और दफन करने के लिए कब्रस्थान तक लिये जाने के समान ही है। किन्तु दहन के लिए शव किसी जलाशय के पास ले जाया जाता है ताकि शव को जलाने के बाद बचे हुए राख आदि अवशेषों को पानी में प्रवाहित किया जा सके। शवदहन के पूर्व मृतक शरीर के सभी कपड़ों को हटा दिया जाता है। उसके शरीर पर केवल कफन का कपड़ा होता है। जलाने के लिए ले जाने के पूर्व की शमशान में लकड़ी जमा किया जाता है। तथा शव ले जाते समय तवा में आग, किरोसन तेल या घी लिया जाता है। अर्थी के पीछे पीछे जाने वाले भी अपने हाथों में लकड़ी लेकर चलते हैं।

जलाशय के निकट 6 फीट लम्बे तथा 3 फीट चौड़े स्थान में उत्तर–दक्षिण लकड़ी सजाये जाते हैं। चिता को व्यवस्थित रखने के लिए धुड़री खुंटा गाडा जाता है। लकड़ी सजाये जाने के बाद शव को चिता के उपर रखा जाता है। दफनाने की विधि जैसा समापनोपरांत सौ में लगाया जाता है। शव आधा जल जाने के बाद उपस्थित परिवार के लोग, परिजन, पंच लोग एक–एक टुकड़ा लकड़ी चिता पर डालते हैं। शव जलकर समाप्त हो जाने पर चिता की आग बुझायी जाती है तथा राख को जलाशय में बहाया जाता है। अस्थि बिछते (चुनते) हैं और पुरखों के निर्धारित जलाशय या नदी या जलाशय में चूका समेत गाड़ देते हैं या बहा देते हैं।

गमी या कामान क्रिया – दफनाने या दाह संस्कार करने जाते समय जितने दतवन घड़े में रखे जाते हैं उतने दिनों के बाद गमी या कामान क्रिया किया जाता है। छोटे बच्चे का मुंहजुंठी नहीं होने के पहले मृत्यु होने पर दफनाने के तुरंत बाद उसी दिन शुद्धीकरण कर लेते हैं। गमी की क्रिया नहीं की जाती है। किशोरावस्था प्राप्त नहीं होने के पहले की मृत्यु में तीन दिनों में ही शुद्धीकरण किया जाता है तथा शव को दफनाया जाता है दाह संस्कार नहीं किया जाता है।

उरांव जनजाति के समाज में अविवाहिता के बारे में भी दफनाया ही जाता है। शवदाह नहीं किया जाता है। ऐसी स्थिति में सात दिनों में ही शुद्धीकरण किया जाता है एवं गमी/कामान क्रिया भी की जाती है। गमी क्रिया में मुण्डन होते हैं। केंकड़ा या मछली या गेड़ी पिसकर देह में छिड़कते हैं। हल्दी पानी छिड़का जाता है। सर्वप्रथम धर्मेश या परमेश्वर को, पुरखों को दुधमा या खीर–भात अर्पण करते हैं। उसके बाद मृतात्मा को दुधना अर्पण किया जाता है।

छाहेइर भीतरान – स्वाभाविक मृत्यु होने पर पुरखों के साथ घर में ही स्थान दिया जाता है। इसके लिये छाहेइर भीतरान क्रिया की जाती है। अस्वाभाविक मृत्यु पर मृतक की आत्मा को पापी समझकर पुरखों के साथ नहीं रखा जाता है। इसलिए ऐसे मृतक की आत्मा का छाहेइर भीतरान नहीं होता है। छाहेइर भीतरान क्रिया गमी या कामान की रात को होती है उसके पश्चात् परिवार, परिजन, हित, कुटुम्बों को भोज भात खिलाया जाता है। इस तरह से मृत्यु संस्कार क्रिया का समापन होता है। जनजाति कुड़मी का मृत्यु संस्कार करीब करीब उरांव जनजाति के जैसा हो होता है।

राजनैतिक जीवन

उरांव या कुडुख जनाजति का राजनैतिक संगठन का प्रारम्भ परम्परागत गांव पंचायत से ही होता है। प्रथम गांव बसाने वाले का गांव में प्रमुख स्थान होता है। उन्हें महतो या मांझी की उपाधी दी जाती है। गांव प्रशासन परिचालन हेतु महतो या मांझी के नेतृत्व में गांव पंचायत संगठित किया जाता है। उरांव जनजाति में गांव पंचायत का बहुत महत्व है। गांवों के समस्त कार्यों की देखभाल का अधिकार गांव पंचायत को प्राप्त है। गांव पंचायत का निर्णय सर्वमान्य है।

गांव पंचायत परम्परागत आदिवासी स्वशासन विधि द्वारा ही संगठित और परिचालित हैं।

कई गांवों को मिलाकर इनका आदिवासी स्वशासन ईकाई बनता है। गांव पंचायत के जटिल तथा अमिमांसित विषयों की सुनवाई उरांव जनजाति की इसी ईकाई में होती है।

सर्वोपरि संगठन को देश संगठन कहते हैं। उरांव जनजाति की आदिवासी स्वशासन की विधि विधान परम्परागत देश संगठन में ही बनती है, जिसे देश भर में उरांव जनजाति अमल में लाती है।

किन्तु मुगल तथा अंग्रेजी शासनकाल में जमींदारी व्यवस्था तथा स्वाधीनोत्तर काल में सरकारी पंचायत व्यवस्था के कारण मुण्डा जनजाति, सांथाल जनजाति, कुड़मी जनजाति, खड़िया एवं हो जनजाति जैसा परम्परागत आदिवासी स्वशासन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। इसके बावजुद स्वाधीन देश में पंचायत, विधानसभा क्षेत्र, संसदीय क्षेत्रों में अनुसूचित जनजाति सुरक्षित सरकारी व्यवस्था के माध्यम अपना प्रतिनिधित्व हासिल कर रहे हैं।

जनजाति खड़िया जनजीवन

"खड़िया" झारखण्ड क्षेत्र की एक आदिम जनजाति है। इनकी अपनी भाषा, अपनी संस्कृति और अपना निवास क्षेत्र है। आदिकाल में खड़िया जनजाति एक बड़ा समुदाय था। राजनैतिक उथल–पुथल में इनकी जनसंख्या घटती गयी है। ये गोष्ठी (Tribe) एक संगठित कबिला है। इस जनजाति के मुख्यतः तीन भाग है। 1) दुध खड़िया, 2) एरेंगा (पहाड़ी) खड़िया, 3) ढेलकी खड़िया।

आदिम निवास भूमि – श्री कालिम केरकेटा (सिमडेगा) के कथनानुसार प्राचीन युग में खड़िया जनजाति पंजाब के खड़िया परगना में निवास करती थी। खड़िया परगना में निवास करने वाली इस जनजाति को आर्यों ने खड़िया कहा। इस जनजाति के लोग सामान्यतः बिहार, झारखण्ड, पश्चिम बंगाल, उड़िसा, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, त्रिपुरा और आसाम तथा बंगला देश में निवास करते हैं।

झारखण्ड क्षेत्र के सिंहभूम, गुमला, रांची, पुरुलिया, बांकुड़ा, मिदनापुर, मयुरभंज, क्योंझर, सुन्दरगढ़, आदि जिलों में निवास करते हैं।

एथनिसिटी– नृतत्वविदों के अनुसार खड़िया जनजाति अष्ट्रोलयेड् रेस के अन्तर्गत हैं। ये गोष्ठी संगठित टोटेमिक हैं, जैसे –

दुध खड़िया		एरेंग खड़िया (मयूरभंज के)		ढेलकी खेड़िया	
ट्राइब	टोटेम	ट्राईब	टोटेम	ट्राईब	टोटेम
1. डुगडुग–	लम्बी मछली	साल–	मछली	मुडु:–	कछुआ
2. कुल्लु–	कछुआ	अशोक–	पेड़	तोरेंग–	पत्थर
3. सोरेंड०–	पत्थर	सारू–	कन्द	सामद–	हरिण
4. बिलुंग–	नमक	बाल्या–	मछली	बागे–	बटेर
5. बा:–	धान	सालुक–	चिड़िया	बारलिहा–	फल
6. केरकेटा–	चिड़िया	नाग–	सांप	चरहड्–	चिड़िया
7. टेटेटोहोएज–	टेटे चिड़िया			आइन्द–	मछली
8. टोप्पो–	चिड़िया			मैल–	धूल
9. किड़ों–	बाघ			किड़ो–	बाघ
				तोपनो–	चिड़िया

मानभूम के एरेंगा या पहाड़ी खेडिया का गोत्र छः हैं:–

(1) गुल्या–शालगुल्या (शाल मछली), (2) भूइया–(मछली), (3) जारू (चूहा), (4) बिड़िया–(कन्द), (5) टेसा–(चिड़िया), (6) हेम्बरोम–गुआ हेम्बरोम–(पान)।

सिंहभूम के एरेंगा खड़िया के गोत्र भी छह हैं और मयूरभंज तथा मानभूम से भी अलग है–

(1) कुसली, (2) खेलना, (3) हुजुर, (4) अंगारिया, (5) कुइचा या भूइया, (6) गोलगु।

कबिलावाची भाषा – जनजाति खड़िया जनसमुदाय की मातृभाषा इनकी कबिलावाची खड़िया है। उपेक्षित अवहेलित इस भाषा का साहित्यिक स्वरूप नहीं रहने के कारण अपनी मातृभाषा के प्रति मोह तोड़कर पश्चिम बंगाल में 'बंग्ला' उड़िसा में 'उड़िया' यहाँ तक की झारखण्ड राज्य में ही कहीं सादरी और कहीं हिन्दी बोलते हैं।

1977 ई0 से रांची विश्वविद्यालय, रांची में जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग खुलने से खड़िया भाषा की भी पढ़ाई होती है वर्तमान में खड़िया पाठ्य पुस्तक आदि की रचना हुई है और हो रही है।

खड़िया संस्कृति

वेशभूषा – खड़िया जाति मुण्डा–नस्ल की है। ये लोग काले और बादामी रंग के होते हैं। सिर जरा लम्बा, नाक मोटी और चौड़ी, चेहरा चौड़ा और भरा हुआ होता है कद नाटा होता है। पुरूष घुटनों तक एक प्रकार का अंगोछा पहनते हैं जो वोतोई कहलाता है। औरत साधारनतः कमर में परिया नामक एक वस्त्र लपेटती है। पीतल के गहने पहनती है। गोदना गुदाना पसन्द करती है।

आधुनिक परिवेश में सुट, सर्ट, पेन्ट, धोती, कुर्त्ता पहनते हैं। औरतें साड़ी, साया, सेमीज, ब्लाउज, पेटीकोट आदि पहनती हैं।

सामाजिक एवं आर्थिक अवस्था – जनजाति खड़िया समाज में पिता ही परिवार का मुखिया होता है। इनमें पुरूष या स्त्री के कर्तव्य बंटे हुए हैं। अनेक काम ऐसे हैं जिनके बारे में यह विश्वास प्रचलित है कि उन्हें स्त्री या केवल पुरूष ही कर सकते हैं। दुध खड़िया एवं देलकी खेड़िया षि कार्य करते हैं। पहाड़ी खेड़िया शहद या रेशम के कोवे संग्रह करते हैं लाह आदि जंगल की पैदावार, जंगली फल–मूल खोदकर हिरण या जंगली पशु–पक्षी का शिकार कर अपनी जीविका का प्रबन्ध तथा भरण–पोषण करते हैं। खड़िया औरत चटाई बुनती है। इस कार्य में चतुर होती है, जिन्हें बेचकर भोजन सामग्री जुटाती है।

परिवार एवं विवाह – जनाजाति खड़िया परिवार पितृसत्तात्मक होते हैं। विवाह आवश्यक माना जाता है, विवाह के पूर्व किसी भी व्यक्ति को समाज में उचित स्थान नहीं मिल पाता है। अपनी गोष्ठी के बाहर शादी की रिवाज है। इनमें कई प्रकार की शादी होती है। (क) नियमित शादी (ख) पलायित विवाह (ग) सिन्दुर विवाह (घ) ढुकु विवाह

(ङ•) विधवा विवाह (च) गोहाल प्रवेश विवाह (छ) आदान–प्रदान विवाह।

विवाह माता–पिता की पसन्द के आधार पर होता है। इनके समाज में बाल विवाह वर्जित है। कन्या पोन देने की प्रथा है। खड़िया जनजाति में पुरूष एवं स्त्री दोनों तरफ तलाक देने का रिवाज है।

धार्मिक जीवन – खड़िया जनजाति में धर्म का महत्वूपर्ण स्थान है। भगवान को खड़िया लोग बेड़ो–लेराड, साखी गोसाई या पानोमोसोर कहकर पुकारते हैं। जिसका अर्थ है – पूर्ण शक्ति, आदि शक्ति, स्व उत्पन्न शक्ति आदि। खड़िया विश्वास के अनुसार देवी–देवताओं में शम्भु राजा और उकाई रानी को शक्तिशाली मानते हैं। खड़िया जनजाति लेंरड (चन्द्रमा) को दया और प्रेम का प्रतीक एवं बेड़ो (सूर्य) की पत्नी मानते हैं। इनका विश्वास है दोरहोडाय जल देवी हैं। जीयोम या आत्मा को अनश्वर मानते हुए पुरखों की पूजार्चना करते हैं। ये व्यक्तिगत पारिवारिक पूजा, तथा सामुहिक पूजा भी करते हैं। सामुहिक पूजा स्थल में पूजा करने वाले पूजारी को कालो या दोहरी कहते हैं। जनजाति का धर्म आदि धर्म (सारना) है।

जनजाति खड़िया पर ईसाई धर्म का अत्याधिक प्रभाव पड़ा है। ईसाई धर्मावलम्बी होने के कारण शिक्षा में काफी प्रगति हुई, फलतः सरकारी उँचे ओहदे में नियुक्ति, आर्थिक स्वच्छलता आदि की प्राप्ति हुई है।

त्यौहार – खड़िया जनजाति कई त्यौहार मनाते हैं। इनमें सारना त्यौहार, फागो त्यौहार, नावाखिया, जाडकोर या सरहुल त्यौहार, करम त्यौहार, बाघिया, कुन्तदात, पोलो, गाओ–गंजारी, रोनोल, बांगरी आदि त्यौहार मनाते हैं। सभी त्यौहार में पोनोमोसोर और पुरखाओं को जीयोम की आराधना, पूजार्चना की जाती है।

मृत्यु संस्कार – खड़िया जनजाति में जब कोई मृत्यु की स्थिति में आ जाते है तो उनके मुंह में क्रमशः तीन ढोंक (घुंट) पानी डाला जाता है। प्राचीन काल में मरणोपरांत लाश को जलाने की विधि थी। दहन

क्रिया के बाद उसकी हड्डी को एक चुका में रखते थे। अस्वाभाविक मृत्यु में दफनाया जाता था इनमें हड़गड़ी या पखनगाड़ी क्रिया भी होती है। वर्तमान में स्वाभाविक मृत्यु में भी दफनाया जाता है। स्वाभाविक मृत्यु पर "लोगोंय डिअभरना" यानि छाया भीतरान क्रिया की जाती है। इनकी मृत्यु संस्कार में कामान क्रिया और पत्थरगड़ी क्रिया की जाती है। परिवार, परिजन और हित–कुटुम्बों को भोज भात खिलाते हैं।

राजनैतिक जीवन – जनजाति खड़िया समाज में गांव पंचायत प्रथा अति प्राचीन है। गांव के नेता को करटाहा कहा जाता है। गांव का शासन उसी के इच्छानुसार होता है। ग्रामवासी उस व्यक्ति को कदर करते हैं। गांव की बैठक बुलाना और गांव के समस्याओं का समाधान करना इनका अनिवार्य कार्य है। क्षेत्रावार नौ गोष्ठी (Tribe) के एक–एक प्रतिनिधि मिलकर एक संगठन बनाते हैं। आवश्यकता अनुसार एक साथ बैठकर आदिवासी स्वशासन विधि के अनुसार सामाजिक शासन व्यवस्था का परिचालन करते हैं। कालान्तर में मुगल और अंग्रेज शासन काल में जमीन्दारी व्यवस्था, पुलिस स्टेशन, न्यायालय की स्थापना, स्वाधीनोत्तर सरकारी ग्राम पंचायत की व्यवस्था तथा ईसाई धर्म के प्रभाव से आदिवासी स्वशासन पर प्रतिकुल प्रभाव पड़ा है फिर भी स्वाधीन भारत में विधानसभा तथा लोकसभा क्षेत्र एवं पंचायती संगठन में आदिवासी या जनजाति सुरक्षित व्यवस्था में प्रशासनिक आधार पर विशेष सुविधा प्रदान की गयी है। प्रशासनिक नौकरी में भी नियुक्ति के लिए आदिवासी सुरक्षित व्यवस्था रही है। ये प्रशासनिक उँचे ओहदे में भी नियुक्त होते हैं।

जनजाति "हो" जनजीवन

झारखण्ड के जनजातियों में "हो" जनसमुदाय भी एक जनजाति है। ये जनजाति झारखण्ड के आदिम निवासी हैं। इनकी कबिला वाचक भाषा है। ये गोष्ठी (Tribe) संगठित है। इनकी अपनी 'हो' संसति है। इनका अपना परब त्यौहार है। जन्म, विवाह, मृत्यु संस्कार, देवी देवताओं की पूजा पद्यति, विधि–विधान अन्य जनजाति जैसी ही है। ये अपनी परम्परागत आदिवासी स्वशासन विधि द्वारा प्रशासित होते हैं।

निवास भूमि – 'हो' लोग कोल्हान राज्य में निवास करते हैं। कोल्हान राज्य सिंहभूम जिला में हैं। ये लोग थोड़ी संख्या में छोटानागपुर के आस–पास में निवास करते हैं। सिंहभूम के पड़ोसी राज्य उड़िसा के मयूरभंज, क्योंझर में भी निवास करते हैं। धनश्याम गागराई के अनुसार इस इलाके में कब से निवास करते हैं यह ठीक ठीक कहना कठिन है।

एथनीसिटी – हो समाज में अनेक गोत्र (किली) होते हैं – जैसे बारी, बोदरा, बिरूआ, जोंकी, पिंगुआ, जोजो इत्यादि ये टोटेमिक होते हैं। ये विधि निषेध मानते हैं। सभी गोत्र या किली का मूल समुह संगठन हो कबिला होती है।

कबिला वाचक भाषा – जनजाति 'हो' समाज की अपनी कबिला वाचक 'हो' मातृभाषा है। 1977 ई0 से जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग राँची विश्वविद्यालय, राँची में कबिलावाची मुण्डारी, सांथाली, कुड़माली, उरांव (कुडुख)–खेड़िया के साथ पाठ्य भाषा के रूप में स्वीकृत हैं। सामुहिक रूप से आधुनिक झारखण्ड राज्य में प्रारम्भिक स्तर से पठन–पाठन की योजना बन रही है।

जनजाति 'हो' संस्कृति – जनजाति 'हो' जन समुदाय का अपना जन्म से मृत्यु तक परम्परागत संस्कार हैं। परब–त्यौहार में आचार–अनुष्ठान, नृत्य–गीत, मनोरंजन, रीति–रिवाज, धार्मिक मान्यता अपना अलग अस्तित्व रखती है।

आर्थिक स्थिति – पहले ही कहा जा चुका है कि 'हो' जनजाति विशेष कर कोल्हान क्षेत्र में ही अधिकतर बसवास करते हैं। कोल्हान क्षेत्र का उत्तरी और दक्षिणी–पूर्वी भाग काफी उपजाऊ है और जंगलों से भरा है। दक्षिणी भाग चौरस है और वहाँ पहाड़ियाँ लगभग नहीं है। खेती बारी की जाती है। पश्चिमी और दक्षिणी–पश्चिमी भाग पहाड़ी और काफी जंगली है। इस इलाके में हिरण, बारहसिंगे, भैंस, बाघ, भालु, पाये जाते हैं। इस क्षेत्र के अन्दर एवं आस पास में लौहा, मैगनीज, तांबा और अन्य खनिज पदार्थ पाये जाते हैं। इसलिए यहाँ के निवासी हो जनजाति खेतीहर तथा खानों में मजदुर का काम करते हैं। पहाड़ी तथा जंगली क्षेत्र होने के कारण पशु–पक्षी का शिकार करते हैं, शिकार जीवि भी हैं। फिर भी इनकी आर्थिक अवस्था उतनी स्वच्छल नहीं है।

वेशभूषा – 'हो' जनजाति के पुरूष लोग कमर से हाँठु (घुटने) तक मोटी धोती पहनते हैं, इनका उपरी भाग खुला रहता है। स्त्रीयाँ मोटी साड़ी पहनती हैं। तांबा चाँदी कांसा के आभूषण पहनती हैं, देह में गोदना गोदवाती हैं। आधुनिक परिवेश में पुरूष व्यक्ति शर्ट, पेन्ट, धोती, कुर्ता, स्त्रीयाँ साड़ी, ब्लाउज, कमीज, सलवार आदि पहनती हैं। सम्पन्न परिवार के लोग सोने–चाँदी के आभूषण पहनते हैं।

सामाजिक जीवन – एक गाँव के 'हो' जन समुदाय कयैक किलियों के निवासी हैं। इनमें से जिस किली का Tribe के लोग प्रथम निवासी होते हैं, उनमें से मुण्डा नियुक्त होते हैं। सामाजिक स्तर पर गांव में उन्हीं की प्रधानता होती है। हो समाज बहुत से गोत्र या किलियों (Tribes) में विभक्त है। जिसका नाम किसी पशु–पक्षी, वस्तु पेड़–पौधों पर रखा जाता है। इस प्रकार हो लोग टोटेम (Totem) को मानते हैं। मुण्डा, सांथाल, कुड़मी आदि जनजातियों के जैसा एक टोटेम के लोग आपस में शादी विवाह नहीं करते हैं। इनका परिवार पितृसत्तात्मक होता है। लड़कियाँ शादी के बाद पति के घर चली

जाती है। इनके समाज में स्त्रियों को पैतृक सम्पत्ति नहीं मिलती है।

जन्म संस्कार – सभी धर्म, सभी जाति सभी समाज में अपना–अपना जन्म संस्कार होता है। 'हो' जनजाति में सन्तोनोत्पत्ति के लिए पुरूष और स्त्री का वैवाहिक सम्बंध अनिवार्य होता है। बिना विवाह का किसी की सन्तान उत्पत्ति को अवैध माना जाता है। ऐसे सन्तानों को 'लाम्वीहौन' कहा जाता है तथा सामाजिक मान्यता नहीं मिलती है। गर्भवती स्त्रियों को कुछेक नियम पालन करना पड़ता है। गर्भवती महिला को सूर्यग्रहण / चन्द्रग्रहण देखना निषिद्ध है, इनका विश्वास है कि ग्रहण देखने से बच्चे के चेहरे पर दाग लगने की सम्भावना होती है। गर्भावस्था में पति–पत्नी की जीव हत्या की मनाही है क्योंकि सन्तान का अंग–भंग की आशंका रहती है। बच्चा प्रसव तक गर्भवती स्त्री शारीरिक परिश्रम करती है। फिर भी परिवार वाले सतर्क दृष्टि रखते हैं।

प्रसव पीड़ा प्रारम्भ होने पर परिवार या गांव की बुजुर्ग और जानकार महिला उपचार करती है। शिशु जन्म लेने के पश्चात् नाभि तथा नाल को बांस के धारदार टुकड़े से काट कर शाल पत्ते के दोनों में रखकर घर के पिछवाड़े जमीन में गाड़ दिया जाता है। बच्चे को जन्म के साथ मधु चटाया जाता है। पति ही पत्नी की सुश्रुपा करता है। दाई प्रसुति का कपड़ा आदि साफ सुथरा करती है तथा देख–भाल करती है।

नारता – जन्म दिन से नौ दिन में नारता क्रिया होती है, तब तक सम्बंधित किली के लोग अछुत माने जाते हैं। इसके बाद इक्कीस दिन में एकुइशा मनाते हैं। बच्चे का नामकरण किया जाता है। बच्चें का पिता स्वयं बच्चे का बाल काटते हैं एवं शाल पत्तों के दोनों में लेकर तालाब में डाल देते हैं।

औरत–मर्द नदी या पोखरे में नहाने जाते हैं। औरतें बच्चे की सुरक्षा के लिए नदी या पोखरे के देवताओं को हल्दी चढाती हैं। इस दिन रिश्तेदारों को आमंत्रित किया जाता है।

नामकरण विधि 'हो' जनजाति के लोगों के नामकरण के लिए कांसा के बर्तन में हल्दी पानी लिया जाता है। इसमें दुब घास डालकर उड़द और आरूआ चावल लिया जाता है। देउरी सभी देवी–देवताओं को आराधना कर पूर्वजों–पुरखों के नाम लेकर एक तरफ एक उड़द विपरीत तरफ एक चावल कटोरा के पानी में छोड़ते हैं। इस तरह एक–एक पूर्वज का नाम लेते हुए छोड़ते जाते हैं, जिस नाम में दुबघास, उड़द, आरूआ चावल तीनों आपस में सट जाते हैं, पूजारी या देउरी उसी नाम को लेकर 'हरिबल' करते हुए खड़े होकर बच्चे का नाम घोषित करते हुए बच्चे को आशीर्वाद देते हैं।

नामकरण की दूसरी विधि – बच्चा जिस दिन में या जिस महिना में या जिस त्यौहार में जन्म लेता है, उस दिन या उस महीना अथवा उस त्यौहार के नाम से नामकरण किया जाता है। जनजाति कुड़मी जनसमुदाय बच्चे के नामकरण के क्रम में इस विधि को अपनाते हैं।

विवाह संस्कार – 'हो' जनजाति के यहाँ विवाह आवश्यक समझा जाता है। अविवाहित रहना पसन्द नहीं करते हैं। अविवाहित को समाज में मर्यादापूर्ण सम्मान नहीं मिलता है। साधारणतः लड़के के माता–पिता किसी 'सुइया' को लड़की के माता–पिता के घर भेजकर शादी ठीक करते हैं। इसके अलावे कोई लड़का किसी लड़की से विवाह करना चाहता है तो अपनी किली के कुछ मित्रों से अपनी इच्छा की चर्चा करता है। फिर पिता–माता के द्वारा सुइया को भेजकर विवाह तय किया जाता है। अगर कोई लड़का किसी लड़की को पसन्द करता है और लड़की भी उससे प्रेम करती है तो माता–पिता विवाह की आज्ञा दे देते हैं। इनके विवाह में कन्या पोन प्रचलित है।

इस तरह से 'हो' जनजाति में विवाह के बहुत से नियम हैं जिसमें निम्नलिखित मुख्य है–

1) अण्डी विवाह – इस विवाह में विभिन्न रीतियों का ख्याल रखा जाता है। अण्डी विवाह की प्रथा उनके समाज में प्राचीन काल से

चली आ रही है। अण्डी विवाह प्रथा में लड़के को गोनांग (Gonang) देते हैं। इसमें 'हो' समाज में उस लड़के का बड़ा सम्मान होता है।

2) डीकू अण्डी विवाह :– इस विवाह में भी रीतियों पर ध्यान रखा जाता है। इस विवाह प्रथा को इन लोगों ने आस–पास के निवासी हिन्दुओं से सीखा है। डीकू अण्डी केवल धनी घराने में प्रचलित है। इस विवाह में ब्राह्मण पुरोहित होते हैं।

3) ओपारतिपी विवाह :– साधारणतः लड़कियों का जीवन अपने माता–पिता के घर सुख से व्यतीत नहीं होता है। इसलिए वे कभी–कभी किसी लड़के के साथ बाहर निकल जाती है, अथवा कोई कोई लड़का बलपूर्वक उन्हें अपने घर ले जाता है, तो वह विवाह करने को तैयार हो जाती है। इसलिए इनके यहाँ आजकल ओपारतिपी विवाह प्रचलित हो गया है। इस प्रकार के विवाह में वधू मूल्य देने की आवश्यकता नहीं होती है।

4) राजी–खुशी विवाह :– इन दिनों इनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है। यही कारण है कि इनके यहाँ राजी–खुशी का विवाह अधितकर प्रचलित है। इस विवाह की बातचीत लड़की–लड़का खुद ही कर लेते हैं।

5) विधवा विवाह :– कभी–कभी शादी के पश्चात् सन्तानोत्पत्ति के बिना बर या पुरूष की मृत्यु हो जाती है। ऐसी परिस्थिति में बधू की लम्बी आयु को ध्यान में रखकर सर्वसम्मति से दोनों के पंचों की राय से मृत स्वामी का छोटा भाई से शादी कर दी जाती है। इसके लिए लड़का और लड़की से सहमति ली जाती है। इसके पश्चात् विवाह का रस्म पूरा कर उन्हें पति–पत्नी के रूप में सामाजिक मान्यता प्रदान कर दी जाती है।

परब–त्यौहार

'हो' जनजाति के लोगों का संबंध प्रकृति के साथ काफी निकट का होता है, इसका रहन–सहन, जीवन स्तर प्रकृति से ही संचालित

होता है। अतः इनके परब–त्यौहार भी प्रकृति से ही सम्बंधित होते हैं।

'हो' जनजाति में मनाये जानेवाले परब–त्यौहार निम्नलिखित हैं :–

1) माघे त्यौहार :– यह त्यौहार फसलों को काटने तथा खलिहान के कार्यों को समाप्त करने के पश्चात् माघ महिने के पूर्णिमा को मनाया जाता है। पुरूष स्त्रियाँ बड़ी दिलचस्पी के साथ मनाते हैं। माघे त्यौहार 'हो' जनजाति का मुख्य त्यौहार है। इस त्यौहार को भारी उत्साह से मनाते हैं।

2) बाहा त्यौहार :– जब प्रकृति में शाल के वृक्षों पर फूल खिलते हैं, तब फाल्गुन पूर्णिमा में उन्हीं फूलों को लेकर घर–घर इसकी पूजा होती है और 'बाहा परब' मनाते हैं। जनजाति कुड़मी, सांथाल इत्यादि लोग इसे 'सरहुल' के नाम से मानते हैं।

3) बाबा मुठ :– कृषि कार्य प्रारम्भ करने के समय धान खेतों में गिराने से पहले इसकी पूजा कर ली जाती है। सामुहिक खुशियाँ मनाते हैं, नाचते–गाते, धुम–धाम के साथ उत्सव मनाते हैं। एक दूसरों को खिलाते–पिलाते हैं। ग्राम देवताओं को पाठा–मुर्गी आदि बलि चढ़ाया जाता है। धान बोना प्रारम्भ होता है। यह परब बैशाख पूर्णिमा में मनाया जाता है।

4) हेरोओ परब :– मैदानी जमीन में फसलों को बोने के समय यह त्यौहार मनाया जाता है। इस अवसर पर प्रत्येक परिवार अपने अपने खेतों में पूजा–पाठ करता है। पांठा–भेड़ा आदि की बलि देकर ग्राम देवता तथा परिवार के सभी पुरखों को याद करते हुए आस–पास के जंगलों–पहाड़ों–वृक्षों पर बसने वाले देवताओं–देवियों को आह्वान करते हुए समय पर वर्षा करवाने, फसलों की सुरक्षा, प्राकृतिक प्रकोप से सुरक्षा की प्रार्थना एवं पूजा की जाती है। इस अवसर पर भी एक दूसरे को खिलाते–पिलाते एवं खुशियाँ मनाते हैं।

5) जोमनावा त्यौहार :– खेतों में धान पकते ही 'हो' जनजाति के लोग जोमनावा त्यौहार मनाते हैं।

ओटाबोरम और सिंगबोंगा तथा अनान्य आराध्य बोंगाओं को नया फसल का प्रसाद अर्पन करते हैं, पुरखों को भी चढ़ाते हैं उसके बाद परिवार के हर व्यक्ति नावा अन्न खाते हैं। धुम–धाम के साथ नाचते हैं आनन्द मनाते हैं। यह त्यौहार भादो पूर्णिमा में मनाया जाता है।

इसके अलावा कोलन और बतौली त्यौहार भी मनाया जाता है। 'हो' जनजाति के लोग हिन्दुओं के त्यौहार से भी प्रभावित होते चले हैं।

धार्मिक जीवन

'हो' जनजाति के जनसमुदाय प्रकृति के उपासक होते हैं। इनके अपने अपने गोत्र या गोष्ठी (Tribe) के कुल देवता होते हैं। ये मन्दिर में स्थापित देवी–देवताओं की पूजा अर्चना नहीं करते हैं। हो जन समुदाय अपने देवी–देवताओं को 'बोंगा' कहते हैं। इनका सबसे बड़ा देवता ओटाबोरम और सिंगबोंगा है। जिसने सारा संसार का निर्माण किया है। नागाबोंगा जल की देवी है और सिंगबोंगा की पत्नी भी। इनके अतिरिक्त दिसौली बोंगा, मटाँग बोंगा, हाटु बोंगा आदि इनके अनान्य देवी–देवतायें हैं इनके विश्वास के अनुसार 'बोंगा एक ऐसी महान शक्ति है जो सभी जीवों को जीवन देती है एवं मार भी सकती है। यह शक्ति विभिन्न रूपों में उपस्थित हो सकती है। संसार में मनुष्य को सुख या दुःख देने वाला यही बोंगा है। 'हो' जनजाति का धर्म आदि धर्म (सारना) है।

मृत्यु संस्कार

जनजाति 'हो' समाज में मृत्यु संस्कार, शव को जलाकर तथा दफनाकर दोनों विधियों से किया जाता है। यद्यपि शव जलाने की क्रिया को इच्छा एवं स्वच्छ माना जाता है, किन्तु दफनाने की विधि ज्यादा प्रचलित है।

'हो' समाज में यह विश्वास है कि मरने के पश्चात् मृतक व्यक्ति

का जीव सिंगबोंगा के पास चला जाता है तथा उनकी इच्छा एवं आज्ञा से पुनः धरती पर जन्म लेता है। ऐसी भी मान्यता है कि यह उसी परिवार में जन्म लेता है।

मृतक की आत्मा या 'रोआ' का मृत्यु के पश्चात् तीसरे या सातवें दिन में उनकी आत्मा को घर के विशिष्ट कमरे में आदरपूर्वक बुलाकर प्रतिष्ठापित किया जाता है। इस तरह प्रतिष्ठापित पितरों या पूर्वजों की आत्माओं का पूजा–पाठ, मान सम्मान के साथ प्रतिदिन किया जाता है। घर पर बनने वाले खाद्य सामग्री को उन्हें अर्पित करने के पश्चात् ही परिवार के सदस्यों द्वारा सेवन किया जाता है।

'हो' समाज में शव संस्कार विधि से स्पष्ट है कि हो समाज के लोगों में अति प्राचीन काल से ही अनान्य जनजाति मुण्डा, सांथाल, कुड़मी, उरांव, खड़िया आदि का तरह मृत्यु के बाद के जीवन में अटुट विश्वास है। लोग मृतक को दफनाने या जलाने के समय उनके दैनिक उपयोग में आनेवाली वस्तुओं को शव के साथ दफनाते हैं या अर्पन करते हैं।

मृतक को गाड़ने या जलाने के पूर्व उसे नहलाया जाता है। नहलाने के पश्चात् कपड़ा बदला जाता है। सिन्दुर एवं अरवा चावल की गुंड़ी का टीका लगाया जाता है। उसके पश्चात् हल्दी तेल माखा कर दफनाया जाता है या जलाया जाता है।

दफनाते समय जब गड़्ढा आधा भर जाता है तो एक धागा के एक छोर में कांटेदार घास बांध कर शव के सिर तरफ रखा जाता है। दुसरी छोर के वृद्धांगुष्ठ में बांधकर एक महिला घर की ओर आती है इससे एक चिन्ह बनता है। यह क्रिया मृतक को रास्ता दिखाने के लिए किया जाता है ताकि जिस दिन आत्मा की बुलाहट होती है उसे घर का रास्ता आसानी से मालुम पड़े। इस क्रिया को औरत के द्वारा की जाती है। इसके बाद वह औरत तालाब में स्नान करने जाती है। वहाँ दुबघास पर आत्मा (रोआ) बुलाने का निश्चित दिन (तीन या सात) की संख्या में गाठ बांध देती है और प्रतिदिन नहाने के पश्चात् एक गॉठ खोलती है। आत्मा बुलाने के दिन यह गाँठ समाप्त हो जाता है।

झाड़खण्ड के जनजातियों की जनसंख्या

The Bihar Reorganisation Act. 2000 के टेबुल VII के अनुसार निम्नलिखित जातियों को अनुसूचित जनजाति के रूप में चिन्हित किया गया है, एवं शशिभूषण कड़वार सह अलेक्स एक्का द्वारा लिखित "भारतीय जनगणना और झाड़खण्डी आदिवासी' नामक पुस्तिका की पृष्ट संख्या 18 एवं 19 में टेबल संख्या–7 : 1981 के अनुसार अनुसूचित जनजातियों की जातिगत संख्या निम्न प्रकार है :–

क्रम संख्या	अनु0 जनजाति	जनसंख्या
1)	असुर	7783
2)	बैगा	3551
3)	बंजारा	10925
4)	बाथुड़ी	1595
5)	बेदिया	60444
6)	भूमिज	136109
7)	बिरहोड़	4377
8)	बिरजिया	4057
9)	चेरो	52210
10)	चिकबड़ाईक	40339
11)	गोड़ाईत	5206
12)	हो	536523
13)	करमाली	90849
14)	खड़िया	141771
15)	खरवार	222758
16)	कोड़ा	33952
17)	कोरवा	21940
18)	लोहरा	169089

क्रम संख्या	अनु0 जनजाति	जनसंख्या
19)	महली	91868
20)	माल पहाड़िया	79322
21)	मुण्डा	845877
22)	उरांव	1048066
23)	सांथाल	2060730
24)	सबर	3014
25)	सौरिया पहाड़िया	39269
26)	बिंझिया	10009
27)	गोंड़	96574
28)	खोंद	1264
29)	किसान	23420
30)	परहया / पहाड़िया	24012
	कुल योग	72,63,925

Source - Singh, Kumar Suresh, 1994, Peoples of India National Series, Vol- III The Scheduled Tribes, New Delhi, Oxford University Pres PP - 1212-1228. झारखण्ड में आदिवासी जनसंख्या के सही निर्धारण के लिए देश की औसत वृद्धि दर 1981–1991 तक भारत में 23.4% रही है। इस तरह से 1991 तक अनुसूचित जनजाति की संख्या 72,63,925 + 16,77,301 = 89,35,226 हो जाती है। झारखण्ड की कुल जनसंख्या 1991 की जनगणना अनुसार 2,18,43,911 है, इस हिसाब से कुल जनसंख्या में अनुसूचित जनजाति का प्रतिशत 40.91% होता है।

1931 की जनगणना रिर्पोट में कुड़मी को प्रिमिटिव ट्राइब्स की सूची में चिन्हित किया गया था। उस समय आदिवासियों की संख्या कुल जनसंख्या की 60% से भी अधिक थी। 1950 एवं 1956 में आजाद भारत की

सरकार ने जब नये सिरे से आदिवासियों की सूची बनाई गई तो उसमें कुड़मी, पान, घासी आदि को नहीं रखा जबकि सूची बनाने का आधार 1931 ई0 की जनगणना का रिर्पोट था। '1931' की जनगणना रिपोर्ट में "प्रिमिटिव ट्राइब्स" की सूची में जो आदिवासी जातियाँ थी उन सभी को अनुसूचित जनजाति की सूची में शामिल किया जायेगा" ऐसी सरकारी घोषणा थी। यही नहीं जबकि बिहार और उड़िसा की सरकार ने आठ दिसम्बर 1931 ई0 के नोटिफिकेशन नं0–3563जे0 के द्वारा भारत सरकार के मेमो नं0 550(21) 2 मई के 1913 ई0 के नोटिफिकेशन के आलोक में अन्य अनुसूचित जनजाति के सदस्यों के साथ जनजाति कुड़मी समुदाय को भारतीय उत्तराधिकार कानुन 1925 के कतिपय धाराओं से मुक्त किया है। बाद में इस नोटिफिकेशन के खिलाफ भारत सरकार तथा बिहार एवं उड़िसा की सरकार ने उपरोक्त आदेश को निरस्त करने के लिए अलग से कोई नोटिफिकेशन जारी नहीं किया है। इसलिए वास्तव में जो आदिवासी हैं उन्हें पुनः सूचीबद्ध नहीं करने पर अनुसूचित जनजाति अल्पसंख्यक हो गये हैं।

जनजाति बहुल झारखण्ड में आदिवासियों की जनसंख्या को सन्तुलित करने के लिए 1931 की जनजणना में "प्रिमिटिव ट्राइब्स" की सूची में जो आदिवासी जातियाँ थीं उन्हें अनुसूचित जनजाति की सूची में पुनः सूचीबद्ध किया जाय।

सम्प्रति झारखण्ड के जनजाति (Tribal) कुड़मियों की संख्या 44 लाख से अधिक है (झारखण्ड की कुल जनसंख्या का 22 % भाग)। अनुसूचित जनजाति की संख्या 89,35,226 में जनजाति यानि आदिवासी कुड़मी महतो को मिलाने पर कुल आदिवासियों की संख्या 89,35,226 + 44,00,000 = 1,33,35,226 होती है जो 1991 ई0 की जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या 2,18,439,11 का 60% से भी अधिक भाग है। अगर मानकर भी चलें कि

1981 से 1991 के बीच भारत की औसत जनसंख्या वृद्धिदर 23.4% में आदिवासी जनसंख्या की वृद्धिदर कुछ कम रही हो, फिर भी उपरोक्त हिसाब के अनुसार झारखण्ड में आदिवासी की जनसंख्या 50% से ज्यादा ही होगी।

सृष्टि संबंधी जनजातीय लोक कथाएँ

लोककथा किसी जाति या समुदाय की जीवन शैली को दर्शाती है। जिस जाति का जीवन जैसा होगा उसकी लोककथा भी वैसी ही होगी। अतः लोककथा उस जाति का दर्पण भी हो सकती है।

जनजाति मुण्डा लोक कथा

पहले इस दुनियाँ में केवल पानी ही पानी था, धरती नहीं थी और धरती के जीव–जन्तु और पेड़–पौधों का कहीं नामोनिशान नहीं था। सारी दुनियाँ में अंधकार ही अंधकार था।

एक दिन भगवान ने लक्ष्मी से कहा कि हमलोग पत्ती पर बैठकर केवल चारों ओर घुमा करते हैं। कभी भी विश्राम का अवसर नहीं मिलता, इसलिए हम धरती को बसावें और आदमी की रचना करें।

तब उन्होंने सूर्य, चाँद और तारे बनाये, फिर दिन में प्रकाश और रात में अंधकार का सृजन किया। और धरती बनाने का उपाय सोचने लगे।

सबसे पहले उन्होंने राघोबोआड़ मछली को बुलाया और उनसे पूछा कि क्या धरती बना सकते हो ? मछली ने कहा कि प्रयत्न करूंगी तब तक तुम लोग मेरे घर की रखवाली करना। भगवान ने स्वीकार कर लिया, मछली पानी में डुब गयी। भीतर जाने में रखवालों ने उसे रोका। मछली ने कहा मुझे जाने दो, मैं भीतर से कुछ लाने के लिए नहीं जा रही हूँ। रक्षकों ने जाने की आज्ञा दे दी।

भीतर जाकर मछली ने सारी गीली मिट्टी को अपने मुँह में दबोच लिया और बाहर को चल पड़ी। लेकिन बाहर आने के पहले

ही सारी मिट्टी पानी में धुलकर बह गई। बाहर आकर उसने अपनी लाचारी प्रकट की। मछली ने कहा अब तो मुझे अपनी जाति में भी नहीं मिलाया जायेगा। भगवान ने कहा, जाओ जाति में ही रहोगी, लेकिन तुम्हारा मुँह कुमनी के समान बड़ा और पूँछ कास के समान लम्बी हो जायेगी।

भगवान केंकड़े के पास आये और पूछा क्या तुम धरती बना सकते हो ? केंकड़े ने कहा, मालिक, प्रयत्न करता हूँ। तुम मेरे घर को देखते रहना। और पानी में समा गया। रखवालों के रोकने पर केंकड़े ने उन्हें अण्डा दिखाकर कहा कि मुझे जाने दो तुम्हें चार अण्डे दूँगा और भीतर घुसा।

पाताल में जाकर उसने मिट्टी को अपनी सूँड़ में दबोचा और बाहर चला, लेकिन सारी मिट्टी गल गई, बाहर आकर उसने कहा, स्वामी धरती भी नहीं बनी और मेरा एक पैर भी टुट गया, अब तो मुझे जाति से बाहर रहना पड़ेगा। भगवान ने कहा, तुम्हारी सारी जाति ऐसी ही हो जायेगी। इधर–उधर रेंगते फिरेगी। छाती में आँख होगी और आगे पीछे दोनों ओर चलोगी। पैर टुट जाने पर भी चलने में कठिनाई नहीं होगी।

अब भगवान कछुऐ के पास आये और बोले, तुम धरती को बनाओगे ? कछुऐ ने कहा कोशिश करके देखता हूँ। तबतक तुम हमारी घर रखवाली करते रहना। कछुआ पाताल को चला। जब रखवालों ने रोका तो उसने कहा कि मैं भला भीतर से क्या लाऊँगी। मैं बिना हाथ पैर का जीव चल फिर भी नहीं सकता। उसे जाने की अनुमति मिली।

भीतर जाकर कछुऐ ने सारी धरती को पीठ पर लाद लिया और ऊपर की ओर चल पड़ा किन्तु सारी मिट्टी रास्ते में ही बह गई। और उसकी पीठ चपटी हो गई। ऊपर आकर कछुए ने भगवान से बोला मुझे सफलता नहीं मिली जब मेरी जाति वाले मुझे जाति से निकाल

देगें। भगवान ने कहा तुम्हारी सारी जाति ही तुम्हारी तरह हो जायेगी। तुम अपना घरबार लिये फिरोगे। तुम्हारे पीठ पर चाहे कोई कितना भी चोट पहुँचाए पर तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी।

तब भगवान सूंडी मछली के पास गये। उन्होंने पूछा कि तुम धरती बना सकोगे ? उसने स्वीकार किया और अपना घर की रखवाली का भार भगवान को देकर मिट्टी की खोज में निकल पड़ी। भीतर जाकर मछली कीचड़ में घुस गई और लेटने ही लगी। लेटने से सारा पानी उपर तक गंदला हो गया और ऊपर पानी के बुलबुले उठने लगे। भगवान को कुछ भरोसा हुआ। उसके बाद कीचड़ में लिपटी हुई मछली बाहर आई। मछली ने कहा स्वामी, मुझसे जो कुछ हो सका मैंने किया। इससे अधिक मुझसे नहीं हो सकता। भगवान ने कहा – जाओ तुम कीचड़ में ही रहोगी और तुम्हें कोई पकड़ नहीं सकेगा। ऐसा कहकर भगवान ने उसके शरीर पर हाथ फेर दिया। तभी से उसके शरीर पर भगवान के हाथों का चिन्ह मौजूद है। मछली ने भगवान को जोंक का पता बताया।

तब भगवान और लक्ष्मी जोंक के पास पहुँचे और बोले हमलोग एक आवश्यक कार्य से तुम्हारे पास आये हैं। क्या धरती बना सकती हो ? जोंक ने कहा मैं अवश्य प्रयत्न करूंगी। वह अपने घर की रक्षा का भार भगवान को देकर पानी में समा गई। भीतर रक्षकों ने रोका, जोंक बोला–मेरे तो हाथ पैर कुछ नहीं है। भला मैं कैसे कोई चीज ला सकुँगी। यह सुनकर रक्षकों ने राह दे दी। भीतर जाकर जोंक मिट्टी और कीचड़ को खाने लगी। भरपेट मिट्टी खा चुकने पर उसके शरीर को लम्बा कर लिया और दूसरी ओर से मिट्टी उगलने लगी (पाखाना करने लगी) पानी के चार भागों में से एक भाग धरती बन गई। धरती को बना हुआ देखकर भगवान ने ऊपर से ही जोंक से कहा अब धरती बन गई, अब तुम अपना काम बंद कर दो। जोंक ने बाहर आकर कहा – स्वामी मुझसे

जितना हो सका किया। भगवान ने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया कि जाओ तुम इसी धरती में ही रहोगी, मिट्टी खाने में तुम्हें कोई कष्ट नहीं होगी।

जोंक को विदा करके भगवान लक्ष्मी से बोले कि अब तो धरती बन गई। अब तुम लीप पोतकर उसे ठीक करो। लक्ष्मी लीपने लगी। जिधर–जिधर उसने लीपा उधर–उधर समतल मैदान बना और जो भाग अछुता रह गया उधर पहाड़ और नदियाँ बनी। तब भगवान ने धरती पर पेड़–पौधे और फूल–फल की सृष्टि की।

उसपर घास–फूस, पशु–पक्षी हुए। उन्हीं पक्षियों में से 'हुर' नामक एक पक्षी ने एक अण्डा दिया। अण्डा से दो मानव सन्तान एक लड़का और एक लड़की निकली। बाद में उन्हीं से मानव जाति का विकास हुआ। 'हुर' के अण्डे से निकलने के कारण मनुष्य 'होरो–को या होड़ो – होन–को कहलाये।

Source :- मुण्डा लोक कथाएँ : जगदीश त्रिगुणायत 1968 ई0

जनजाति सांथाल लोककथा

सिंगबोंगा स्वयं है, सर्व शक्तिमान है सृष्टि का मूलाधार है। पहले सारा संसार जल ही जल था। अंधकार आच्छन्न था। सिंगबोंगा (भगवान) ने सूरज–चाँद–ताराओं की सृष्टि की, दिन और रात का सृजन हुआ। ये पृथ्वी की उत्पत्ति की बातें सोचने लगे। सिंगबोंगा ने जोंक को पृथ्वी के निर्माण के लिये कहा। जोंक पानी के भीतर से मिट्टी उठाने लगे, मिट्टी की ढ़ेरी हो गयी। इस तरह से पृथ्वी की सृष्टि हुई, वनस्पति–पशु–पक्षी की सृष्टि हुई।

सांथालों की परम्परागत लोक–कथा के अनुसार आदि मानव जाति के पिता – माता पिलचु हाड़ाम एवं पिलचु बुढ़ी थी। उन लोगों का आर्विभाव एक जंगली नर हंस और हंसनी के द्वारा दी गई दो

अण्डे से हुई है। पिलचु जिसका अर्थ है, ''मौलिक हाड़ाम'' एक वृद्ध या बुजुर्ग पुरूष मनुष्य या एक विवाहित पुरूष और बुढ़ी एक वृद्धा स्त्री या विवाहिता स्त्री जबकि हाड़ाम–बुढ़ी का उपयोग एक विवाहित जोड़ा के लिए किया जाता है या एक ऐसी जोड़ी ''जो पति पत्नी की तरह साथ रहते हैं'' पारम्परिक नाम का मतलब या अर्थ यह नहीं है कि सांथाल जाति की उत्पत्ति एक जोड़ा हंस के द्वारा हुई हो, बल्कि – ''हंस–नर और हंसी –नारी'' अर्थ के लिए प्रयोग किया गया है।

इस पहली जोड़ी से सात लड़के और सात लड़कियाँ पैदा हुई। आगे चलकर सातों भाई और सातों बहनों की आपस में शादी हुई। यथा समय बच्चे–बच्चियाँ पैदा हुए। उसके बाद ''सातो माता–पिता और दादा–दादी'' ने आपस में बैठकर यह तय किया कि आगे चलकर सगे भाई और बहनों की आपस में शादी विवाह नहीं होगी।

उक्त सातों माता–पिता के वंशज गोष्टियों (Tribes) या गोत्रों में परिचित हुए। ये –हांसटाग, मुरमु, किसकु, हेमब्रम, मरांडी, सोरेन, और टुडु कहलाये। लेकिन पहला इन रेसों का 'खोज–कमान' में विनाश हो गया, सिर्फ एक सगा जोड़ा (सेप्ट) 'हाराटा के गुफा' में जीवित रहा। इस जोड़े से उत्पन्न वंशज की वंश वृद्धि हुई। पुनः सात कुलों में विभाजित हुए और उक्त पुराने नामों से ही परिचित हुए। उन्हीं के वंशजों में आगे चलकर और नये पाँच कूलों को जोड़ी गई, वे हैं – बास्के, बेसरा, पुनअरिया, चँड़े और बेदिया। इस तरह से सांथाल जनजाति की लोक कथा में पृथ्वी की उत्पत्ति वनस्पति, पशु–पक्षी, सांथाल, जनजातियों (Tribe) की सृष्टि कथा कही गई है। आगे चलकर जनंसख्या की वृद्धि के फलस्वरूप हर एक कुल में बारह–बारह शाखाएँ बनी।

Source :- Bihar District Gezetteers Santhal Parganas - Page - 871-72 P.C. Ray Choudhary, 1965.

जनजाति कुड़मी लोककथा

पहले सारी दुनियाँ में पानी ही पानी था। रात–दिन नहीं होते थे। अंधकार ही अंधकार था। गसाञ (ईश्वर) ने सर्वप्रथम बेरा (सूर्य) की सृष्टि की, दिन और रात होने लगी। इसके उपरांत जिदअ (चाँद) एवं ताराओं की सृष्टि की। तदुपरांत उन्होंने धरा (पृथ्वी) के निर्माण का उपाय सोंचा।

उस समय सारा संसार जलमय था, जल में सिर्फ जल जीव ही थे। गसाञ ने मेढ़क की सलाह से जलजीवों की सभा बुलायी मेढ़क, कछुआ, केंकड़ा, मछली आदि सभा में उपस्थित हुए। गसाञ (ईश्वर) ने उपस्थित जलजीवों के सामने धरा (पृथ्वी) के निर्माण की बातें रखी।

मेढ़क – इसके लिए तो मिट्टी चाहिए।

गसाञ – मिट्टी कहाँ मिलेगी।

केंकड़ा – मालिक, इसकी तलाश तो कछुआ ही कर सकेंगे।

गासाञ – (कछुआ से पूछा) क्या तुम मिट्टी की तलाश कर सकते हो ? क्या मिट्टी लाकर पृथ्वी का निर्माण कर सकते हो ?

कछुआ – हे प्रभु, मैं क्या कर सकूँगा, क्या नहीं, वह तो पीछे की बात है, लेकिन मिट्टी की खोज करने अवश्य जाऊँगा। चलिए तब तक आप हमारे घर में ठहरेंगे।

सभा स्थगित की गई, सभी अपने अपने घर चले गये। कछुआ गसाञ (ईश्वर) को अपने घर ले गये। सम्मानपूर्वक उन्हें अपने घर में तबतक ठहरने का अनुनय–विनय कर मिट्टी के संधान (खोज) में पानी के अतल–तल में समा गया। पानी के भीतर काफी गहराई में चलते रहा चलते ही रहा–अंत में मिट्टी मिल गयी। कछुआ आनन्दित होकर इधर–उधर घुम–घुम कर देखने लगे। कहीं कहीं मिट्टी की ढ़िपियाँ देखने को मिली। कछुआ ढ़िपियों के इर्द–गिर्द घुम रहा था, तब जेंगटी से भेट हुई, एक दूसरे को देखते लगे, थोड़ी देर बाद आपस में बातचीत होने लगी।

जेंगटी – (कछुआ से पूछा) तुम कौन हो ? यहाँ क्या कर रहे हो ?
कछुआ – मैं कछुआ हूँ। मैं ईश्वर के आदेश से आया हूँ तुम कौन हो ?
जेंगटी – मैं जेंगटी हूँ। कछुआ भाई, क्या तुम बता सकते हो कि ईश्वर के कौन से आदेश से आये हो ?
कछुआ – प्रभु की इच्छा है कि धरा यानि पृथ्वी का निर्माण करना, इसके लिए मिट्टी जरूरी है, मिट्टी के संधान (खोज) में आया हूँ।
जेंगटी – संधान तो मिल गया ?
कछुआ – जी हाँ, अच्छा जेंगटी भैया, क्या तुम बता सकते हो कि अगल–बगल में ये ढ़िपियाँ क्यों ?
जेंगटी – हम लोग कादों (कीचड़) में रहते हैं, कादों खाते हैं, कादो ही झाड़ा फिरते हैं, झाड़ा की ही ये ढ़िपियाँ हैं।

कछुआ ने ध्यान से सुना और गौर से देखा। जेंगटी से विदा लेकर अपना घर की ओर वापस चला गया। घर पहुँचकर गासाञ (ईश्वर) को सारी बातें कह सुनायी। दूसरे ही दिन कछुआ को साथ लेकर गसाञ जेंगटी के पास पहुँचे। उससे कहा –क्या तुम धरा का निर्माण कर सकते हो ? जेंगटी ने कहा –प्रभु का आदेश हो तो मैं कोशिश कर सकता हूँ तब तक आप इसका दैनिक लेखा–जोखा रखेंगे।

इतना कहकर जेंगटी सपरिवार पृथ्वी निर्माण के काम में जुट गये। भर पेट मिट्टी खाने लगे और शौच करने लगे। इस तरह दिनोदिन मिट्टी का ढेर बनता गया। गसाञ प्रसन्न होकर दैनिक लेखा रखते चले। जब सारी दूनियाँ के चार भागों में एक भाग मिट्टी बन गई, तब गसाञ ने प्रसन्न मुद्रा में चिल्ला–चिल्ला कर कहा, "बंद करो–बंद करो, धरा का निर्माण हो गया–धरा का निर्माण हो गया।" तब जेंगटी ने निर्माण कार्य बंद किया। गसाञ ने जेंगटी को आर्शीवाद दिया कि जाओं तुम मिट्टी में ही रहोगी, मिट्टी खाने में कष्ट नहीं होगा, इसी में जिओगे, अब आराम करो।

कछुआ, मेंढ़क, मगर, मछली, केंकड़ा सभी पृथ्वी को देखने लगे। ईश्वर ने उन्हें कहा–धरा तो बन गयी, तुम लोग इसे समतल बनाओ। चुँकि मिट्टी गिली थी, वे जिधर–जिधर घुमे फिरे समतल होता गया। जिधर नहीं घुमें उधर पहाड़–नदियाँ बनी। ईश्वर ने इन जलजीवों को जलचर और स्थलचर यानि उभयचर होने का आशीर्वाद दिया।

धरा या पृथ्वी की सृष्टि की लेखा–जोखा समाप्त होने के बाद ईश्वर ने उस कलम को मिट्टी में खोंस दी। उस से एक पौधा बन गया। पौधा क्रमशः बढ़ने लगे, डाइर–डाहुर–डहोड़ा से झबर उठा। उस पेड़ का नाम करम पेड़ रखा गया।

तदुपरांत बेरा और धरा को खंट एवं बिरिखा की सृष्टि का दायित्व सौंपे। पशु–पक्षी की सृष्टि और रक्षा का दायित्व लिलौरी देवी को सौंपे।

करम का पेड़ बढ़ता गया झबरता गया, विशाल वृक्ष बन गया गसाञ (ईश्वर) धराधाम को घुम घुम कर देखने लगे। धरा यानि पृथ्वी को सजाने के लिए हाथ–पैर वाले मनुष्य की जरूरत महसुस हुई। तब ईश्वर की इच्छा से उसी करम वृक्ष की डहोड़ा में हाँसा राजा और हाँसारानी खोता (घोंसला) बनाकर निवास करने लगे। कुछ दिनों के बाद हाँसारानी एक फेड़का (अण्डा) दिया। उस फेड़का से दो मानव संतान जन्में, एक लड़का –एक लड़की। वे जब कुछ बड़े हुए तब खोता (घोसला) से उतर कर जमीन में चलने–फिरने लगे। उसी करम पेड़ के नीचे एक कुड़म (कछुआ) रहता था। वह कुड़म यानि कछुआ दोनों मानव शिशु को आस–पास में टहलाने ले जाता और करम पेड़ के सामने झाड़ी का कुम्बा में लौटा लाता। दोनों शिशु झाड़ियों के विभिन्न प्रकार के फल –खाकर धीरे–धीरे बढ़ते गये। जवान हुए तो "रेंगहा हेड़म" और "रेगही बुढ़ी" नाम से परिचित हुए। ये स्वामी–स्त्री जैसा साथ–साथ रहने लगे। इससे वंस वृद्धि होती गई।

इनकी संख्या इतनी बढ़ी कि ये हुजा–हुजा (दल–दल) में विभक्त

होकर रहने लगें। कालान्तर में एक ही हुजा या दल में जन्में लड़के और लड़कियाँ में यौन सम्बंध यानि प्रजनन हेतु स्वामी–स्त्री का सम्बंध निषिद्ध करार किया गया। विभिन्न हुजा विभिन्न टोटेम (Totem) विश्वासी गोष्ठियों (Tribes) के रूप में पहचाने जाने लगे। वर्तमान में 81 एकासी टोटेमिक गोष्ठियों में विभक्त है।

इनके प्रथम पिता–माता रेंगहा हेड़म और रेंगही बुढ़ी शिशु काल में कुड़म (कछुवा) के साथ रहकर खेलते थे। इसलिए सभी गोष्ठियों (Tribes) का समुह संगठन (Confenderacy) या कबिला का नाम कछुवा टोटेमीक कुड़मी कबिला नाम पड़ा है। इसलिए कुड़मी कबिला के सभी टोटेमीक गोष्ठियों के जन समुदाय अपना तालाब–अपना खेत अपनी जमीन में कछुवा पाने से मारते नहीं, खाते नहीं, बल्कि तेल, सिंदुर, काजल की त्रि–नैवैद्य से देवता स्वरूप पूजा अर्चना कर अपने जलाशय में छोड देते हैं। करम पेड़ के खोता से जन्म के कारण करम पेड़ या उसकी डाली पूज्य है। रेंगहा हेड़म–रेंगही बुढ़ी को कुड़मी कबिला के जनसमुदाय प्रथम पिता–माता मानते हैं, ये कुड़माली देव–मण्डल यानि ग्राम देवताओं के देव मण्डल में आराध्य हैं –पूज्य हैं ये ही बुढ़ा बाबा (For father) के रूप में पूज्य हैं।

Source :- कुड़मी कथा : करम–बांदना गीत
घासी राम महतो, राघवपुर, पुरूलिया (मानभूम)
बंगाब्द–1962 साल।

दूसरी लोक कथा

गासाञ (ईश्वर) ने जब जलमग्न संसार था, तभी जल जीवों की सृष्टि की थी। क्रमशः बेरा, जिदअ, तारे, धरा, आग, हवा की सृष्टि की, उसके बाद खंद (शस्य) वृक्ष, वनस्पति, पशु, पक्षी की सृष्टि की। इनकी सुरक्षा और तेंतार – सुसार के लिए अपनी ही शक्ति से शक्ति

सम्पन्न विभिन्न देव–देवियों की सृष्टि की। इस प्रकार दिन–रात के साथ साथ रंग बिरंग की पक्षियाँ, तरह तरह के पशु, कीडे–मकोड़े की सुष्टि के उपरांत पृथ्वी को सजाने के लिए रम्य भूमि बनाने के लिए हाथ पैर वाले मनुष्यों की सृष्टि की बातें सोचने लगें।

ईश्वर ने मिट्टी लेकर सोंचते सोंचते मनुष्य आकृति स्वरूप एक लड़का और एक लड़की की मुरतें बनायीं। प्राण दान देने ही वाले थे किन्तु ठहर गये और सोंचा कि ये तो कच्चे ही रह जायेगें। यह सोंचकर मुरतों को पकने के लिए छोड़ दिए। सामने एक विशाल बरगद का वृक्ष था, अगल–बगल में झाड़ियाँ थी। वहीं अथाह पानी का एक दह था। दह में एक कुड़म (कछुआ) रहता था। झाड़ियों में गुड़र–बटेर, तितिर, घाघर आदि चिड़ियाँ रहती थीं। एक चितकबरी भूरी कुतिया उन चिड़ियों को रगेद–रगेदकर पकड़ रही थी। कुतिया के पैरों से कुचलकर दोनों मुरतें टुट–फुट गई। हाथ पैर की उँगलियाँ, धड़, सिर सभी टुटकर अलग अलग हो गये। ईश्वर ने कुतिया के तरफ गुस्से भरी नजर से देखा तो कुतिया डर के मारे सिकुड़ गई और करूण वितनी कर ईश्वर से क्षमा मागने लगी। स्वयं तथा भावी वंशजो की ओर से मनुष्यों की रक्षार्थ पहरेदार जैसा काम करने की कसम खायी। ईश्वर शान्त हो गये। आज भी कुत्ते–कुत्तियाँ मनुष्यों के लिए रात में पहरेदारी करती आ रही हैं।

ईश्वर व्यथित मुद्रा में मुरतों के टुटे अंग–प्रत्यंगो को बरगद वृक्ष के नजदीक मिट्टी खोदकर अलग–अलग गाड़ दिए। मायामयी ईश्वर की ही कृपा से गड़े हुए धड़ से एक पाकुड़ का पेड़ हाथों से आंख (ईख) की झाड़ी, पैरों से बांस की झाड़ी, उँगलियों से केंउआ का झाड़ सिरों से महुआ के पेड़ निकले। हर साल सन्तान मंगलकामी स्त्रीयाँ जितिया व्रत में आंख (ईख), बरगद की डाली, पाकुड की डाली, बांस की कुनुई, केंउआ झाड़, महुआ लकडी से बनी माथानी एक साथ गाड़कर पूजा अर्चना करती आ रही हैं।

टुटे मुरतों के अंगो को गाड़ने के बाद पुनः युगल मुरत गढ़े और

टुटने के डर से पकने न देकर प्राण संचार कर दिये। बगल के बरगद पेड के फेड़ (तने) में गहरा कटोर बनाकर उस कटोर के भीतर दोनों मुरूतों को सुरक्षित रख दिए। ईश्वर की कृपा से बरगद पेड़ का रस दुध बन गया। वो दुध लड़का–लड़की के मुह में टपकने लगा और वे उस दुध को पीने लगे। प्राण संचार के छठे दिन ईश्वर ने उन्हें सस्टि माञ की जिम्मे कर दिया। सस्टि माञ उन्हें हंसाती, रूलाती, खेलाती दुध पिलाती, तथा स्वयं कटोर के कोने में रहती। आदिम जनजाति कुड़मी जनसमुदाय छठी के दिन बरगद के पेड़ में परम्परागत सस्टि माञ की पूजा करते आ रहे हैं।

गइ (सात) ठिपा क्षेत्र की मिट्टी, लुकुई घास चुआँ का पानी से ईश्वर ने मूर्तियाँ बना कर धड़ के कोटर में सुरक्षित रखा था, बच्चे धीरे–धीरे बड़े होकर बाहर घुमते, फिरते, खेलते रहते थे। कभी कभी दह के आमने सामने बैठकर खेलते रहते थे। कुड़म (कछुआ) भी दह से बाहर निकलकर उनके साथ खेलता। उस बच्चे का नाम रेंगहा और बच्ची का नाम रेंगही रखा गया था। एक रोज दह के सामने खेलते खेलते रेंगहा फिसलकर दह में गिर गया, रेंगही रोने लगी, चिल्लाने लगी, उसकी आवाज सुनकर कुड़म (कछुवा) रेंगहा को अपनी पीठ पर बैठाकर उसे दह के बाहर ले आया। उस दिन से कुड़म के साथ रेंगहा–रेंगही का प्रेम बढ़ गया। वे किशोर अवस्था पार कर यौवन अवस्था में आ गए। तब वे कुटिया बनाकर रहने लगे। भाई–बहन होने के नाते वे दोनों अलग अलग सोते थे। चुँकि ईश्वर की इच्छा वंश वृद्धि करने की थी, वे उनसे मिलकर कुछ पेड़ों की छाल, कुछ पत्तियाँ मिलाकर खाने को कहा। रेंगहा–रेंगही नशे में आकर एक ही साथ सोये। उस दिन से रेंगहा का नाम रेंगहा हेड़म और रंगही का नाम रेंगही बुढ़ी हुआ। हेडम का अर्थ "वीर्यवान" यौन शक्ति सम्पन्न परम पुरूष और बुढ़ी का अर्थ प्रजनन शक्ति सम्पन्न महिला।

उक्त परम पुरूष और महिला से नौ पुत्र सन्तान और नौ कन्या सन्तान का जन्म हुआ। वे भी आपस में स्वामी–स्त्री के सम्बंध में बंध गये।

ईश्वर की ही प्रेरणा से प्रति दम्पति कोई पशु, कोई पक्षी, कोई जलजीव, कोई गर्तजीव, कोई कीड़े–मकोडें, कोई फल कोई प्राकृतिक द्रव्यादि के प्रति आसक्य हुए। इनमें से दो जोड़े गहन जंगल में बिछड़ कर खो गये। बाकि सात दम्पत्तियाँ और उनके पिता–माता आस पास में ही निवास करने लगे, समय के साथ इनका वंश विस्तार होता गया। सातों दम्पत्तियों के पुनः नौ–नौ पुत्र और नौ–नौ कन्या सन्तान जन्म लिए इनमें लज्जा का भाव पैदा हुआ, तब ये भाई–बहन स्वामी–स्त्री के रूप में बंधने से नाराज हुए।

कहा जाता है कि तब रेंगहा बुढ़ा के 63 (तिरसठ) नाति उनके सात पुत्र दादा–दादी सपरिवार एकत्रित है। तिरसठ नाति अपने अपने पिता के आसक्त जीव–फल द्रव्यों में एक एक नाम लिए, यही उनके टोटेम (Totem) हुए। इस तरह से टोटेमीक 63 (तीरसठ) गोष्ठियाँ (Tribes) बनी। यह तय हुआ कि अपना टोटेमीक गोष्ठियों में विवाह नहीं करेंगे। अपना अपना टोटेम को मारेंगे नहीं, खायेंगे नहीं या व्यवहार नहीं करेगें। सभी गोष्ठियों का एक सामुहिक संगठन (Confederacy) बना, उसका नाम आदि पुरूष के बाल्यावस्था के प्रिय कुड़म (कछुआ) टोटेमीक कुड़मी कबिला पड़ा। पीछे और 18 (अठारह) गोष्ठियाँ जुड़ी इस तरह जनजाति कुड़मी कबिला में कुल 81 (एकासी) गोष्ठियाँ हैं।

रेंगहा बुढ़ा –रेंगही बुढ़ी उसके सात पुत्र और सात पुत्रवधुओं में से अलौकिक शक्ति सम्पन्न नौ देव–देवियों के रूप में जनजाति कुडमी कबिला में परम्परागत आराध्य हैं, पूज्य हैं। इनकी आदिम निवास भूमि के गरामथान–जाहिरस्थान में इन देव–देवियों का निवास है। आदि पिता–आदि माता को आदिम जनजाति कुड़मी कबिला के जन समुदाय बुढा बाबा (For Father) महामाञ (For Mother) के रूप में परम्परागत पूजते आ रहे हैं।

Source : परम्परागत सुनकहनी : स्व0 हाँदु महतो।
घाघरजुड़ी, पुरूलिया (मानभूम) 1956 ई0

जनजाति उरांव कुड़ुख लोककथा

जब परमेश्वर ने आकाश और धरती की सृष्टि की तो धरती पूर्ण अंधकार थी। उपर–नीचे मात्र यह पानी से भरा था। उसने जल में रहने वाले जल प्राणियों की सृष्टि की। बिना सुखी धरती के जल में न रहने वाले जीव–जन्तुओं को किस प्रकार रख सकता था। अतः उसने धरती निर्माण के लिए केंकड़े को जल के नीचे से मिट्टी ले आने को भेजा। केंकडे ने जल में डुबकी लगायी। अपनी टांग से मिट्टी खोदकर तथा पकडकर आया किन्तु पानी में आते आते सब मिट्टी घुल गयी। खाली हाथ परमेश्वर के पास पहुँचा। परमेश्वर ने पुछा–"मिट्टी कहाँ है ?केंकडे ने कहा–क्या करूं प्रभु पानी में आते आते तो टांग से सारी मिट्टी ही घुल गयी। तब परमेश्वर ने क्रोधित होकर अभिशाप दिया तुम देखने में तो काफी सीधा लगते हो किन्तु वास्तव में बहुत टेढ़े हो, जिस प्रकार तुम्हारा स्वभाव है, आज से उसी प्रकार चलोगे। उसी दिन से केंकड़ा टेढ़ा चलता है और तिरछा देखता है।

अब परमेश्वर सोचने लगे कि किसे भेजा जाय। तब कछुए ने आकर छाती ठ़ोंक कर कहा 'प्रभु, मैं जाऊँगा और आपका काम करूँगा। परमेश्वर ने जाने की अनुमति दे दी। कछुआ पानी के अन्दर घुसा और मिट्टी खोद–खोद कर अपनी पीठ पर लाद लिया तथा यह सोचते हुए कि मैं ही सारी धरती को ढो रहा हूँ, परमेश्वर के पास आया। पानी से उपर आने के क्रम में सारी मिट्ट़ी पानी में घुल गई। परमेश्वर ने पूछा कि मिट्टी कहाँ है ? उसने कहा– प्रभू पीठ पर मिट्टी ढ़ोकर आ ही रहा था किन्तु आते आते सब मिट्टी पानी में घुल गयी, तो मैं क्या करूं ?और शर्म के मारे सिर, मुंह, आँख, कान सब छिपा लिया। उसी दिन से कछुवा आदमियों को देखने पर अपना सिर छिपा लेता है।

अब परमेश्वर का होश–हवास ही गुम हो गया था कि क्या किया जाए। अंत में केंचुए ने कहा कि मैं मिट्टी लाने और आपका काम करने के लिए जाउँगा प्रभु, यदि मैं नहीं सकुँगा तो क्षमा कीजिएगा। केंचुए ने अभिशाप के डर से यह कहा था। परमेश्वर ने कहा–तुम बिना टोकरी के मिट्टी कैसे ले आओगे ?केंचुए ने कहा कोशिश करूँगा। परमेश्वर ने कहा जाओ।

केंचुआ क्या करेगा, पानी के नीचे गया भर पेट मिट्टी खाकर उपर आया। तब परमेश्वर ने पुछा मिट्टी कहाँ है ?तब वह उनके हाथ में मिट्टी उगल दिया और उसके फैलने, सुखने पर धरती बन गयी तथा परमेश्वर ने उसमें स्थलचर जीवधारियों और पेड़ पौधों को बनाया।

पुरखे कहते हैं कि परमेश्वर ने एक जोड़ा मिट्टी की मूर्ति बनायी और यह सोचकर कि सुखने पर आग में तपाकर उनमें जीवन फूँक दुँगा, और सुखने के लिए छोड़ दिया। लेकिन पंखाराजा, हंसा राजा घोड़े ने गुस्से में मूर्ति को रोंद कर चूर–चूर कर दिया। उसने इसलिए ऐसा किया कि यदि मानव बढ़ जायेंगें तो उससे ही काम लिया करेंगें। परमेश्वर ने पुनः मूर्ति बनाकर सुखाया। इस समय भी घोड़ा रोंदने के लिए आया किन्तु वहाँ एक कुत्ता था जिसने उसे काटकर भगा दिया। मानव की रक्षा के लिए ही परमेश्वर ने कुत्ता बनाया है। परमेश्वर ने घोड़े को देखकर कहा कि यह तो और रोंद डालेगा तब उन्होने बिना सूखे–पकाये मूर्ति में जीवन डाल दिया। उस समय मनुष्य दो ही थे एक लड़का एक लड़की। क्रमशः वंश वृद्धि हुई। इस कच्ची काया के कारण ही इस दूनियाँ में मनुष्यों को मरना पड़ता है।

दूसरी लोककथा

इस दुनियाँ में मानव काफी व्याप्त हो गये। साथ – साथ कुकर्म भी होने लगे। परमेश्वर शाम–सवेरे बाहर आते थे और उन्हें मानवों का आचरण देखकर अच्छा नहीं लगता। तब अपनी दीदी – भाटु से परमेश्वर आग और पानी भेजने की सलाह

लेते हैं, वे कहते हैं – दीदी उन्हें–तोडुँगा तो अच्छाई–बुराई सब ठीक हो जाएगा।

तब उसकी दीदी बोली : नही, तुम आग पानी भेजना चाहते हो, धरती पर जितने चींटी, पिपरी, गाय–बैल तथा अन्य जीव–जानवर एवं पानी में रहने वाले कीड़े–मकोड़े सभी नष्ट हो जाऐंगे। फिर इतने सारे चीज क्षण भर में कहाँ ढुँढ़ोगे ?

परमेश्वर अपना दीदी–भाटु का कहना नहीं माना, तो दीदी अपने मुलुर खोंपा में दो भाई–बहन मानव बच्चों को छिपाकर रखी। अब परमेश्वर में आग और जल–प्रलय भेजा। मानक, पक्षी, गाय–बैल आदि सभी जलकर भस्म हो गये, दह गये। तब परमेश्वर अपनी दीदी–भाटु के पास आकर निराश बैठ गया। वह रोज आता और लौट जाता। उसकी दीदी के मन में भय हो गया कि जो मानव बच्चे जीवित हैं उन्हें भी वह नष्ट कर देगा। उसकी दीदी भाई–बहन को सातों पट्टी राज के सिरासिता खेत में स्थित गांगला झाड़ी के कंकड़े छेद में छिपाकर रखी। वहाँ उनसे बोली –"ऐ बेटे, ऐ बेटी, कोई भी आवाज दे तो कंकड़े छेद से जबाब न देना। निकलना मत। जिस दिन मैं तुम्हें बुलाने आउंगी, उसी दिन निकलोगे। मैं ही तुम्हें निकालुंगी।"

परमेश्वर मानव बच्चों की खोज करते समय थक गया। निराश होकर दीदी–भाटु के पास आकर बैठ गया। दीदी ने गुस्से के मारे उन्हें भोजन तक नहीं दिया। वह दीदी के समक्ष गिड़गिड़ाने लगे। उन्हें गिड़गिड़ाता देख दीदी को दया हुई। दीदी ने परमेश्वर को बच्चे बच्चियों का पता बताया और कहा –"शोर मचाना नहीं चुप–चाप जाओ। सातोपट्टी खेत के गांगला झाड़ी के कंकड़े छेद में दो मानव बच्चे हैं। सवेरे धूप तापने के लिए निकलते हैं। तुम चुप–चाप चले जाओ। जब वे बाहर निकलेंगे तो शिकारी पक्षी को छोड़ देना, वह जाकर छेद बंद कर देगा। फिर कुतिया को बच्चों को पकड़ लाने को कहना।"

परमेश्वर ने लिलीभूली, खैरी कुतिया और छेछड़ा पक्षी (शिकारी पक्षी) एक ढँठोर लेकर गया और दीदी ने जैसा बताया वैसा ही किया। दोनों बच्चों को ढँठोर में भरकर लाया। दोनों भाई–बहन एक कुड़िया में रहने लगे। धीरे–धीरे बड़े होने लगे। चुँकि भाई–बहन के नाते अलग–अलग सोने लगे।

परमेश्वर ने पुनः धरती को जंगल–झाड़ से भर दिया। पक्षियों का भरमार हो गया। कीड़े–मकोड़े बढ़े और अन्य जीव जानवर भी भरपूर हो गये। दिन रात भी होने लगे। परमेश्वर ने उन्हें हल बैल लेकर खेत जोतना सिखाया। साँवां–कोदो–गुंदली की खेती होने लगी। दोनों भाई–बहन को सितमसड़ा बनाने की विधि सिखाई। धर्मेश की पूजा अर्चना करने के बाद उन्हें सितमसड़ा का प्रसाद अर्पण करने को कहा तथा परमेश्वर के आने के बाद ही उन्हें प्रसाद लेने को कहा। दिन निश्चित कर परमेश्वर चला गया।

उसके कथनानुसार सब कुछ तैयार हो गया। थाली–बर्त्तन के अभाव में बहन कोरकोट की पत्ती लाकर दोना बनाती है हँड़िया छानकर रोटी पकाती है। परमेश्वर के पहुँचने की आशा टुटने पर वह अपने भाई के लिए हँड़िया देती है। वह सितमसड़ा करके पीता है तो उसकी बहन भाई को पूछती है –''कैसा लगता है भैया'' ए बहन बिना आग–लकड़ी का पका हुआ चीज ऐसा स्वाद, थोड़ा तुम पीकर देखो,'' लड़के ने जबाब दिया। उसने भी कोरकोट की पत्ती का दोना बनाकर हँड़िया को पीया। नशे में आकर दोनों एक साथ एक ही बिछावन पर सो गये।

दूसरे दिन परमेश्वर आया और सारी जानकारी मिलने पर परमेश्वर ने कहा–''मेरी भी इच्छा यही थी।'' इस तरह से मानवों की वंश वृद्धि होने लगी। आगे चलकर विभिन्न टोटेमिक गोष्ठियों (Tribe) में विभाजित हुए। भाई–बहनों में शादी बंद हुई। स्वगोष्ठी बहिर्विवाह होने लगी। मनुष्य सुख स्वच्छन्दता पूर्वक बसवास करने लगे।

Source : उरांव संस्कृति ब्र0 मिखाएल कुजुर एस0 जे0
पृष्ठ 222 –226 : प्रकाशन – 1993 ई0

जनजाति खड़िया लोककथा

आरम्भ में आकाश मण्डल में सिर्फ पानी ही पानी था। पानी पर पोनो–मोसोर, सखी गोसाँई, डकाई रानी और सेम्भू राजा निवास करते थे। सुनसान जगह उन्हें अच्छा न लगी। उन्होंने सोचा कि मानव की रचना के पहले पृथ्वी की रचना की जाय। पोनोमोसोर ने जल का मंथन किया। जल जमकर दही बन गया। दही का मंथन कर घी निकाला, घी को पकाकर घड़े में रखा। घी के घड़े को पानी में रखा। तत्पश्चात् पोनोमोसोर ने जल सुअर बनाया। उसने सुअर से कहा–जल में प्रवेश करो और घी की रोटी ऊपर निकालो। सुअर ने "जल में प्रवेश किया और घी की रोटी को दाँत से ऊपर फेंका पोनोमोसोर ने उसे सात टुकड़ों में विभाजित किया। ये ही जल–थल के उपविभाग हैं। पोनोमोसोर ने एक पाट बनाकर पृथ्वी पर ठोंका इससे जमीन का कुछ भाग ऊपर उठ गया। जमीन का ऊपर उठा हुआ भाग पहाड़ कहलाया। घी की रोटी पर पोनोमोसोर ने विभिन्न जीवों को उत्पन्न किया। सर्वप्रथम उसने जोंक की रचना की। जोंक घी की रोटी खाकर मल त्यागने लगी। ऊपर फेंका हुआ मल का बड़ा हिस्सा छोटी पहाडी बन गयी। इसके बाद पोनोमोसोर ने एक केंकड़ा की सृस्टि की। उसने उसे पृथ्वी की खोज करने का आदेश दिया। केंकड़ा ने जल के अन्दर प्रवेश किया। पृथ्वी को पकडकर जल के ऊपर इतना जोर फेंका कि पृथ्वी दो टुकड़ों में विभाजित हो गयी। दूसरा टुकड़ा वही है, जिसे आज हम चन्द्रमा कहते हैं। पोनोमोसोर ने कहा–"मैंने पृथ्वी को पा लिया है।"

पृथ्वी अब भी जल में सराबोर थी। उसे सुखाने के लिए उसने सूरज, तारे और अन्य ग्रहों की रचना की। इसके बाद पृथ्वी पर पोनोमोसोर ने घास–पात, पेड–पौधों, और विभिन्न जीव–जन्तुओं की रचना की। पोनोमोसोर ने पानी से कुहासा उठाकर पृथ्वी को सम्भाला।

पनोमोसोर ने एक पंखदार घोड़े की रचना की। घोड़ा हवा में उड़ सकता था। पोनोसोमोर ने दो मानव की मुर्तियाँ बनायी।

सुखने के लिए उन्हें धूप में रखा। बार बार घोड़ा उड़ता हुआ आता और मूर्त्तियों को पैरों तले कुचल डालता था। तीन दिनों तक ऐसा ही होता रहता है। इस घटना से पोनोमोसोर क्रुद्ध हो गये। उन्होने काँटें की लगाम बनायी। घोड़े पर स्वयं सवार हो गये। घोड़ा थक कर चुर–चुर हो गया। वह मुँह से फेन (झाग) उगलने लगा और मर गया।

इसके बाद पोनोमोसोर ने पुनः नर–नारी की दो मूर्त्तियाँ बनायी। उन मूर्त्तियों को पोनोमोसोर ने बरगद पेड़ की खोंढ़र में रखा। वृक्ष से बरगद का दूध मुँह में टपकने से मूर्त्तियाँ सजीव हो गयीं। बड़े होने पर वृक्ष की खोंढ़र से बाहर निकले। वे पहाड़ों के खोह में बसने लगे। कंद–मूल खाकर जीवित रहने लगे। पोनोमोसोर ने उन्हें सन्तान प्राप्ति का वरदान दिया। कुछ ही दिनों में उनकी सन्तानें अधिक बढ़ गयी।

दूसरी लोककथा

मानवों की संख्या इतनी बढ़ी कि खाद्यान्न का अभाव हो गया। तब मनुष्य ने पक्षियों का, पशुओं का माँस खाना प्रारम्भ किया। माँस खाकर उदण्ड हो गये और फलदायक वृक्षों को काटने लगे। इससे पोनोमोसोर अप्रसन्न हो गये। उन्होंने मानव जाति को इस धरती से मिटा देना चाहा।

मानव जाति को नष्ट करने के लिए पोनोमोसोर ने भीषण जल प्रलय भेजा, मनुष्य बाढ़ में डुब मरे। इने गिने होशियार लोगो ने पहाड़ों पर चढ़कर अपने प्राणों की रक्षा की। आठ दिनों के बाद पानी कम हुआ। जमीन दिखाई दी, धरती सुखने लगी। कुछ मानव प्राणी बच निकले।

टागे चलकर मानव ने पोनोमोसोर को पुनः अप्रसन्न किया। इस बार पोनोमोसोर ने मानव जाति को पृथ्वी से विनष्ट कर देने की योजना बनायी। पोनोमोसोर ने लगातार सात दिन और सात रात अग्निवर्षा की। पृथ्वी से मानव जाति विनष्ट हो गयी।

सेम्मू राजा और इकाई रानी सिर्फ दो भाई–बहन को जोभी में छिपाकर रखा था। उनका नाम जेरका और जेरकी था।

अपने ही विनाशकारी कार्य पर पोनोमोसोर को क्षोभ हुआ। उसने अपने संवाददाता चिड़ियों को बुलाया। ढ़ेचुआ, कौआ, कुहु और लिपि को जीवित मनुष्य की खोज में भेजा। कौआ, जेरका–जेरकी दो भाई–बहन का संवाद पोनोमोसोर को दिया। तब पोनोमोसोर सेम्भू राजा और इकाई रानी के पास गया। उसने मानव जोड़ी को लेने की दुआ की। पोनोमोसोर को विनाशकारी कहकर डकाई रानी देने के लिए इनकार कर दी। तब पोनोमोसोर ने कहा –मैं मानव जाति का विनाश कदापि न करूंगा। तुम मानव का सातवाँ हिस्सा ले लो। मैं केवल एक हिस्सा लुँगा। इस तरह से डकाई रानी का सातवाँ हिस्सा शरीर है और पोनोमोसोर का एक हिस्सा आत्मा है।

सन्तानोत्पत्ति की लोक कथा – आदि नर–नारी के लिए बतायी गयी है पहली लोक कथा मुर्त्ति बनाकर जीवन दान मिलने के बाद मानव सृष्टि को बढ़ाने के लिए बतायी गयी है। इस लोक कथा के अनुसार कहा जाता है कि आदि नर–नारी जो भाई–बहन थे, पोनोमोसोर ने उन्हें हँड़िया तैयार करने का आदेश दिया। उन्हें हँड़िया पीने का भी आदेश दिया। वे पीकर मतवाला हो गये। नशा में चूर होने पर लज्जा भी दूर हो गयी। उसी दिन से सहवास आरम्भ हुआ। सन्तानों की वृद्धि होती गयी।

दूसरी लोक कथा के अनुसार आदि नर–नारी भाई–बहन थे। उसका नाम जेरका और जेरकी था। वे जंगल में रहते थे। कन्दमूल खाकर जीते थे। सहवास करने में उन्हें लज्जा आती थी। अतः बीच में लकड़ी का बड़ा टुकड़ा रखकर सोते थे। एक रात खापु नामक एक चिड़िया लकड़ी के टुकड़े पर बैठ गयी। वह ''चापु–चापु–चापु–चापु'' कहकर रोने लगी। नींद से जागकर जेरका ने आवाज सुनी। उसने समझा कि पोनोमोसोर उसे 'चापु' करने का आदेश दे रहा है।

उसी रात से सन्तान उत्पत्ति का कार्य आरम्भ हुआ। वंश वृद्धि होती गयी।

Source : खड़िया जीवन और परमपराएँ

फा0 जोवाकिम डुंगडुंग ये0य0

पृष्ठ –52–55, 1999 ई0

जनजाति 'हो' लोककथा

'हो' जनजाति की सृष्टि कथा के अनुसार –सिंगबोंगा ने जब चारों ओर पानी ही पानी देखा तो उसके मन में यह विचार आया कि इस पानी को हटाकर धरती का निर्माण कैसे किया जाय। अतः उन्होने सर्व प्रथम कछुआ और केंकड़ा का सृजन किया और उन्हें धरती का निर्माण काम सौंपा। वे जब इस काम में असफल रहे तो सिंगबोंगा ने अपनी जाँघ की मैल से दो चेरा पैदा किया। एक को स्त्री और दूसरे को पुरूष बनाया, इन चेराद्वय को पानी के भीतर भेजकर धरती बनाने का काम सोंपा। ये पानी के भीतर जाकर नीचे से मिट्टी को ऊपर निकालना शुरू किये और मिट्टी का पहाड़ बना दिया। यही बाद में कड़ी मिट्टी में परिणत होकर ''धरती'' बन गयी।

प्रारम्भ में तो सिंगबोंगा ने कछुआ–केकड़ा और चेरा का सृजन किया था, परन्तु असमतल धरती को समतल करने तथा उस पर अन्य जीवों–पशुओं तथा वनस्पतियों के सृजन हेतु हाथ–पैर सन्पन्न किसी ऐसे जीवधारी की आवश्यकता महसुस हुई जो कि धरती का श्रंगार कर सके। अतः सिंगबोंगा ने दो भूजाओं से सम्पन्न सुरभि–दुरभि का सृजन किया। यही प्रथम अथवा आदिम मानव युगल हुए। सृस्टि की सृजन शृंखला को आगे बढ़ाने के लिए सिंगबोंगा विभिन्न वन्य–पशुओं का सृजन किया और उनके सहयोग से धरती को शस्यश्यामला (समतल एवं उपजाऊ) बनाने का आदेश सुरभि–दुरभि को दिया।

सुरभि–दुरभि अर्धमानव प्राणी थे। पूर्ण मानव के सृजन का कार्य

सिंगबोंगा ने बाद में किया। सुरभि–दुरभि द्वारा रचित सुरम्य प्रकृति को देखकर सिंगबोंगा बहुत प्रसन्न हुए और सृष्टि के नवलतम के रूप में सृजित तरू–वाटिकाओं को देखकर उनकी सुरक्षा उपयोग एवं विकास की चिन्ता उन्हें हुई। अतः उन्होंने मिट्टी की मूर्त्ति बनाकर उसमें प्राण का प्रतिरोपण किया और लुकु हाड़ाम या 'लुकु' नाम से सम्बोधित किया। यह अकेला पुरूष सृजन करने में असमर्थ था। इसलिए सिंगबोंगा ने उसकी बायें पसली की हड्डी निकालकर (जब यह सोया था) एक स्त्री का निर्माण किया जिसका नाम "लुकमी" (लुकमी बुढ़ी)। इस प्रकार "हो" मिथ में आदि पुरूष "लुकु" और आदि नारी "लुकुमी" हुई जिससे मानव जाति का विकास हुआ।

Source : 'हो' लोक कथा : एक अनुशीलन

डॉः आदित्य प्रसाद सिन्हा : 1997 ई0

पृष्ठ –28 –29

भारत सरकार एवं राज्य सरकार के अधिकारियों के निर्देश विभिन्न सरकारी नोटिफीकेसन एवं सर्कुलर में जनजाति कुड़मी कबिला और अनान्य अनुसूचित जनजातियाँ –

1. झाडखण्ड के परम्परागत आदिम निवासी ट्राईब्याल–टोटेमिक आदिवासी कुड़मी कबिला के जनसमुदाय अति आदिम जनजाति (Primitive Tribes) द्राविड़ियन रेस के हैं। ये कुड़मी (Kur.mi) कहलाते हैं। प्रथायिक विधि के द्वारा परिचालित हैं। अपेक्षाकृत अनेक बाद में उत्तर बिहार (अघुन बिहार) उत्तर प्रदेश, गुजरात आदि क्षेत्रों से आकर बसे कुरर्मी/कुर्मी कहलाते हैं। ये ननट्राईब्यान–ननटोटेमीक हैं। ये जनजाति नहीं, आर्य रेस के हैं। इस सम्बंध में।

Appendix-IV
Journal of Asiatic Society of Bengal
Vol. LXIII and LXVII, 1894, 1894] 1898.
XI- On the Kurmis of Bihar, Chutia Nagpur, and Orissa-
by
G.A. Grierson, C.I.E.C.S., Ph.D
(Receving August 19th, Read November 2nd, 1898)
Regarding this caste Mr. Risely on page 528 of his "Castes and Tribes of Bengal" Writes as follows :-

That the kurmis of Bihar differ considerably from those of chutia Nagpur and Orissa. They have different customs, dirrerent appearance, and so far as I have been able to ascertain claim no

relationship with each other. The Linguistec Survey has, in addition, shown me that they speak different languages, I think that it is erroneous to supose that the two so-called sections from one caste. The mistake has evidently arisen from incorrect transliteration. The "Kurmis" of Bihar are an Aryan, race, and they spell the name of their Caste कुरमी Kurmi whith a smooth र r. The tribre on the contrary, which is numerous in chutia Nagpur and orrisa (especially in the Tributary stateof the latter province and in Manbhum and the east of Singhbhum) spells its name कुड़मी Kurmi कुडुम Kurum or कुडुम Kudum, all with a hard ड Or ड d. I find from inquiry that the Manbhum pepole know of the Bihar Tribe and carefully preserve the difference of spelling In sub-Tribe, called कुडुम Kurum, the members of which aver that they are the original nucleus of the entire caste. They claim close connexion with Santals, and one of their main torems is the tiger, the santali for which is kul, while in another, Kolaria language Mundari, It Kula and in another, Kharia Kiro, with a charge of ल I to hard ड r. Their language, which is a mixture of Bihari and Bengali, with several aboriginal words added, is called, in Manbhum कुड़माली Kurmali , and in the Orissa Tributary States कुडुमाली Kur.umali.

2. ततकालीन महामान्य भारत सरकार का 1913 ई0 के 550 नं0– नोटिफीकेसन में अनुसूचित जनजाति सूची (Scheduled Tribe list) में मुण्डा, उरांव, संथाल, खड़िया, हो आदि जनजातियों के साथ प्राथमिक विधि द्वारा परिचालित जनजाति कुड़मी कबिला के जनसमुदाय भी अनुसूचित जनजाति सूची में सूचीबद्ध रहे हैं।

The Gazettee of India

Published by Authority

No.-18 Simla Saturday May 3, 1913 separate paging is given to this part in order that it may be filed as separate comilation.

HOME DEPARTMENT

NOTIFICATION (The 2nd May 1931)

No. 550 Whereas the tribes known as the Mundas, Oraons, Santals, Hos, Bhumij, Kharias, Ghasis, Gonds, Kandas, Korwas, Kurmis, Male Sauries and Pans, dwelling in the province of Bihar and Orissa have customary rules of succession and inheritance incompatiable with the provisions of Indian succession Act 1865 (X of 1865) and it is inexpedndient to apply certain those provisions of that Act to the members of those tribes.

In exercise of the power consferred by section 33 of the Indian Succession Act 1865 (X of 1865) the Governor General in council is pleased to exempt all Mundas, Oraons, Santals, Hos, Bhumij, Kharia, Ghasis, Gonda, Kandhas, Korwas, Kurmies, Male Sauries, and Pans dwelling in the Province of Bihar and Orissa from the operation of the provisions of the Act retorspectively from the passing of the Act.

Provided that this notificaiton shall not be held to affect any person in regard to whose right a decision contrary to its effect has already been given by competant Civil Court.

W.S. MARRIS

Off Secretary to the Government of India

भारतीय उत्तराधिकार कानून (X of 1865) के क्रम में भारतीय

3. कुटिलतापूर्वक छल–छद्म के बाबजूद भी 1931ई0 की भारतीय जनगणना में तत्कालीन छोटानागपुर के जनजाति कुडमी कबिला को अति आदिम जनजाति (Primitive Tribes) कहकर परिगणित किया गया है।

Census of India -1931

Vol- I- India

Part -III- Ethnographical

Primitive Tribes - Page 507

List of passage in provincial and state Census Reports (1931) bearing on the customs conditions or welfare of primitive tribes glems marked with an asterisk appear in part -III of this Volume.

Census Volume and Province Etc.	Chapter or Passage in which referance is Made	Subject	Author
....	....	....	....
....	....	....	....
....	....	....	....
VII Bihar and Orissa	Appendix V	The Kumis of Chhotanagpur	W.G. of Lacey
VII Bihar and Orissa	Appendix VII	The Santals	W.G. Lacey & P.O. Bodding
....	....	....	....

Elhnographic Notes by Varius Authors

Edited by

J. H. Hutton

उत्तराधिकारी कानून 1925 (XXXIX of 1925) के तहत प्रथायिक विधि द्वारा परिचालित मुण्डा, सांथाल, कुडमी, उरांव, खडिया, हो, आदि जनजातियों से सम्बंन्धित 1931 ई0 में बिहार–उडिसा सरकार की उत्तराधिकारी कानूनी नोटिफीकेसन।

THE BIHAR & ORISSA GAZETTEE
PUBLISHED BY AUTHORITY

NO. 49 PATNA, WEDNESDAY,
16 DECEMBER , 1931,

Separate paging is given to this part, in order that it may be filed as a separate compilation.

PART-II

Regulations, Orders, Notification, RUles, etc, issued by the Governor of Bihar and Orissa and by Heads of Department.

JUDICIAL DEPARTMENT
NOTIFIATION (The 8th December 1931)

No. 3563. J. Whereas the tribes known as the Mundas Oraons, Santals, Bhumij, Kharias, Ghasis, Gonds, Kands, Kowas, Kurmis, Male (Saurias) and pans, dwelling in the province of Bihar and Orissa have customary right of successio and inheritance incomplatable wit the provisions of the Indian Succession Act, 1925 (XXXIX of 1925), and it is inexpendient to apply certain of the provisions of the said Act to the members of those tribes.

In exercidse of the powers conferred by section 3 of the Indian Succession Act, 1925 (XXXIX of 1925) and in superession of notification No. 550 dated the 2nd May 1913 of the Government of

India in the Home Department, teh Government of Bihar and Orissa are pleased to exept all mundas, Oraons, Santals, Hos Bhumij Kharias, Ghasis, Gonds, Kands, Korwas, Kurmis, Male (Saurias) and Pans, Dwelling in the province of Bihar and Orissa from the operation of the following provisions of the said Act, namely, section 5 to 49, 58 to 1991, 212, 213, and 215, 369 retrospectively from the sisteenth day fo March 1865.

Provided that this noticication shall not be held to affect any persons in regard to whose rights a decision contrary to its effect has already been given by a completent civil court.

By Order of the Government in Council
J.A. SWEENEY
Secretary to
Government

5. 1931 ई0 की भारतीय जनगणना में "प्रिमिटिभ ट्राईब्स" कहकर परिणीत जनजातियों को स्वाधीनोत्तर भारत सरकार द्वारा निर्मित जाति सूची में अनुसूचित जनजाति सूची में सूचीकरण हेतु 1950 ई0 में सांसद डॉ0 एच0 एन0 कुंजरू सह पन्द्रह सांसदों के संसद में प्रश्नोत्तर के क्रम में भारत सरकार का निर्देश–

Government of India order, S.R.O. 510 dated 6th September 1960 and No. 2/38/50- Public dated the 5th October 1950 declared that only those who were in the list of primitive tribes in the "census report of 1931" were to be include in the list of Scheduled Tribes . The President's order in 1950 under section 342 of the Constitution, however, left the matter vagus and Dr. H. N. Kunzru

and fifteen other members of the Parliament wrote a letter of the Prime Minister on the 17th Dec. 1950 seeking clarifications on the issue. The reply on 15th February 1951 made it clear that "the primitive tribes mentioned in 1931 census, as distinguished from caste, were to be included as Schedule tribes" unless the State Govt. concerned could that certify the omissions of a particular tribe was incorrect and that the community was in fact not only a tribe but a primitive or backward tribe". Further it mentioned that community which was not regarded as classifiable as "Primitive tribes" as long ago as 1931 and have never enjoyed any special political representation on that basis should not for the first time be given such representations "Schedules Tribes[53]"

---

52. Cited is the memorandum by M. Ps
53. Letter of Dr. H.N. Kunzru and 15 other members of parliament on 17.12.50 and reply on 15.02.51 cited in Ibid

6. बिहार सरकार भू–अर्जन विभाग के विशेष सचिव सह निदेशक अनुप मुखर्जी की पत्र संख्या 2202, डी0एल0ए0– नीति 3/84 दिनांक पटना, 25 मई 1984 ई0 की राज्य सरकार के विधि विभाग का परामर्श उपरान्त सरकारी सर्कुलर में मुण्डा–संथाल–उरांव–हो आदि अन्यान्य आदिवासियो की पंक्ति में आदिवासी कुड़मी।

पत्र संख्या–2202 डी0 एल0 ए0– नीति – 3/84

प्रेषित,–

सभी उपसमाहर्ता

सभी उपायुक्त

विषयः– मृतक पंचाटियों के उत्तराधिकारों को भू–अर्जन अधिनियम 1894

(अधिनियम 1 ऑफ 1894) के अन्तर्गत मुआवजा का भुगतान आदिवासियों द्वारा उत्तराधिकार प्रमाण–पत्र प्रस्तुत करने के सम्बन्ध में।

पटना, दिनांक 25 मई, 1984

महाशय,

निर्देशानुसार उपर्युक्त विषय के प्रसंग में मुझे कहना है कि राजस्व एवं भूमि सुधार विभाग के परिपत्रांक 1520 डी0 एल0 ए0 जहाँ प्रत्येक मृतक पंचावटी के पंचाटित राशि 10,000/– रूपये (दस हजार रूपये) से अधिक हो, ऐसे मामलों में मृतक पंचावटी के दावेदार को समक्ष न्यायालय से उत्तराधिकारी प्रमाण–पत्र प्रस्तुत करने पर ही मुआवजा राशि का भुगतान होगा। इस सन्दर्भ में राज्य सरकार का ध्यान भारत सरकार गृह मंत्रालय की अधिसूचना संख्या 550 दिनांक 2–5–1913 की ओर आकृष्ट करते हुए अभ्यवेदित किया गया है कि उक्त भारत सरकार की अधिसूचना के आलोक में आदिवासियों को मुआवजा भुगतान करने के लिये चाहे वह किसी भी रकम की हो, उत्तराधिकार प्रमाण –पत्र प्रस्तुत करना आवश्यक नहीं है। विचारोपरांत राज्य सरकार की उचित अधिसूचना की धारा 332 के अन्तर्गत निर्गत की गयी थी, जिसका समावेश की धारा 3(3) में की जा चुकी है, जिसके अनुसार मुण्डा, उरांव, सांथाल, हो, भूमिज, कहरिया, घासी, गोंड, कान्ध, करवा, कुड़मी, मेलसोरिया एवं पान को उत्तराधिकार प्रमाण पत्र, प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं है।

भारत सरकार की अधिसूचना संख्या 550 दिनांक 5–5–1913 की प्रति सहज प्रसंग हेतु संलग्न की जाती है।

विश्वास भाजन,
ह0/ अनुप मुखर्जी
स्रकार के अपर सचिव सह निदेशक भू–अर्जन

7. भारत सरकार के महामान्य प्रधानमंत्री मनानीय राजीव गांधी के समय झाड़खण्ड आन्दोलन के प्रतिनिधियों द्वारा केन्द्रीय गृहमंत्री को प्रस्तुत ज्ञापन और जून तथा अगस्त 1989 में हुई बैठकों में उनके द्वारा उठाए गए मुद्दों को हल करने तथा बिहार, मध्य प्रदेश, उड़िसा और पश्चिम बंगाल में पड़ने वाले झाड़खण्ड क्षेत्रों के निवासी जनसाधारण के राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक सर्वांगिण विकास हेतु भारत सरकार गृह मंत्रालय की जारी आदेश के अनुसार अगस्त 1989 में (C.O.J.M.) झाड़खण्ड मामलों से संबंधित समिति का गठन किया गया था। इस समिति की रिर्पाट (मई 1990) में झाड़खण्ड के "कुड़मी (KURMI) महतो" आदिवासी हैं।

उक्त समिति में (क) झाड़खण्ड आंदोलन के बारह प्रतिनिधि (ख) केन्द्रीय सरकार के प्रतिनिधि – श्री के0 बी0 सक्सेना, संयुक्त सचिव, ग्रामीण विकास विभाग। श्री बी0 के0 मिश्रा, संयुक्त सचिव, जनजाति विकास समाज कल्याण मंत्रालय। विधि मंत्रालय से श्री बी0 एस0 लाली, संयुक्त सचिव गृह मंत्रालय। (ग) राज्य सरकार के प्रतिनिधि – श्री जे0 एल0 आर्य, गृह सचिव बिहार, सचिव जनजाति कल्याण बिहार एवं क्षेत्रीय विकास आयुक्त राँची। (घ) विशेषज्ञ – डा0 के0 एस0 सिंह, महानिदेशक, भरतीय मानव सर्वेक्षण। डा0 भूपिन्दन सिंह, भारत सरकार के भूतपूर्व सचिव। (ङ) अन्य प्रतिनिधि – प्रो0 लाल चन्द चुड़ामणि नाथ शाहदेव, अध्यक्ष, सदन विकास परिषद, राँची, प्रो0 शाहिद हसन, महासचिव, सदन विकास परिषद, राँची। ये उक्त समिति के सदस्य थे। श्री बी0 एस0 लाली संयुक्त सचिव, गृह मंत्रालय (भारत सरकार) आयोजक थे।

उक्त समिति की रिर्पोट की पृष्ठ संख्या 18, क्षेत्रीय आयामक कण्डिका 25 में उल्लिखित – "झाड़खण्ड आंदोलन शुरू से ही एक झाड़खण्ड राज्य बनाने के लिए चलाया गया जिसे बिहार के छोटानागपुर और संथालपरगना जिलों तथा मध्य प्रदेश, उड़िसा और पश्चिम बंगाल के समीपवर्ती

जिलों में से बनाया जाना था। इन क्षेत्रों की या इनके अधिकांश हिस्सों में आदिवासी (सांथाल, मुण्डा, हो, उरांव) और गैर सरकारी आदिवासी (कुड़मी) महतो इत्यादि। समुदायों की काफी आबादी है जो जातीयता ऐतिहासिक, सांस्कृतिक रूप में छोटानागपुर के पैतृक समुहों से सम्बद्ध है। झाड़खण्ड आन्दोलन इन समीपवर्ती क्षेत्रों में इन समुदायों के मध्य फैला हुआ है।''

एक दशक उपरान्त भारत में 28वाँ राज्य ''जनजाति बहुल झाड़खण्ड राज्य'' 2000 ई0 में बना।

8. भारत सरकार राज्य सभा की ''मिनिस्ट्री ऑफ सोशीयल जस्टीस एण्ड एम्पाउअरमेण्ट विभाग'' शास्त्री भवन, नई दिल्ली की पत्र संख्या 12016–23/2000, दिनांक 15.02.2001 के तहत झाड़खण्ड की अनुसूचित जाति–अनुसूचित जनजाति सूची को पुनरीक्षित कर झाड़खण्ड की कुड़मी जाति को '' ट्राइबल केटेगरी'' में शामिल करने हेतु झाड़खण्ड सरकार की मतामत एवं अनुशंसा के लिए झाड़खण्ड सरकार के कल्याण विभाग को भारत सरकार राज्य सभा सचिवालय से पत्र –

No. 12016-23/2000-SCF. (R.L.Cell) Jharkhand
Government of India
Ministry of Social Justice and Enpowerment
Shastri Bhawan, New Delhi
Dated 15-02-2001

To

The Secretary,
Government of Jharkhand
Social Welfare Department
Ranchi

Subject :- Revision of Scheduled Castes/Scheduled Tribes list of Jharkhand.

Sir,

I am directed to refer to this Ministry letter of even number dated 05.11.2000, 15.12.2000 and 15.01.2001 on the subject mentioned above Comments views of the State Government have not received till date Rajya Sabha Secretariat is pressing hard for a decision for finalization of matter regarding inclusion of Kurmi casts in Jharkhand within Scheduled tribe category.

It is therefore requested that the Comments of your Government may kindly be furnished to this Ministry urgently as the Rajya Sabha Sceretariat asking for Information on the proposal.

Thanking You,

Your's faithfully

(T.C. Joshi)
Assistant Director

9. झाड़खण्ड आदिवासी कुड़मी समाज कार्यालय के पत्रांक आ0 कु0 स0 8/A - 2001, शहीद निर्मल महतो कॉलोनी, न्यु सामलोंग, राँची – 10, दिनांक – 28.04.2001 के अनुसार जनजाति कुड़मी कबिला को पुनः अनुसूचित जनजाति सूची में सूचीबद्ध हेतु माननीय मुख्यमंत्री को स्मार पत्र सोंपा गया है जिसकी प्रतिलिपि महामहिम

राज्यपाल महोदय, झाड़खण्ड सरकार एवं माननीय समाज कल्याण मंत्री, झाड़खण्ड सरकार को आवश्यक कार्यार्थ सोंपी गई है।

इस संदर्भ में उप सचिव कल्याण विभाग, झाड़खण्ड सरकार के पत्रांक 721 दिनांक 23.05.2001 झाड़खण्ड सरकार कल्याण विभाग, झाड़खण्ड जनजातीय कल्याण शोध संस्थान राँची – 8 के माननीय निदेशक महोदय के पास भेजा गया है। इस पत्र में कुड़मी जाति को अनुसूचित जनजाति सूची में शामिल करने हेतु केन्द्र सरकार को सिफारिश करने के सम्बन्ध में जाँच प्रतिवेदन उपलब्ध कराने का निर्देश दिया गया है। जो लम्बित एवं प्रक्रियाधीन है।

जनजाति बहुल झाड़खण्ड राज्य में जनजातीय जन संख्या को संतुलित करने हेतु उक्त वास्तविक तथ्य को केन्द्र सरकार के पास सिफारिश की जाएगी, ऐसा जनजाति कुड़मी कबिला के जनसमुदाय को पूर्ण विश्वास है।

ग्रंथ पंजी

क्रमांक	पुस्तक का नाम	लेखक
1.	लोकायत दर्शन	देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय
2.	झाड़खण्डेर लोक संस्कृति	राधागोविन्द महतो
3.	झाड़खण्ड में आदिवासियों का पारम्परिक स्वशासन व्यवस्था	वीर सिंह सिंकु
4.	The Santhal and Their Ancestors.	D.Barka Kisku.
5.	Sanskritization vs Nirbakization	Pashupati Prasad Mahato
6.	जनजाति का समाजशास्त्र	आर. के. रस्तौगी
7.	झाड़खण्डी जनजीवन(ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन)	बसंत कुमार बंसरिआर
8.	भारतीय जनगणना और झाड़खण्डी आदिवासी	शशि भूषण काडुआर आलेक्स एक्का
9.	उरांव संस्कृति	ब्र0 मिखाएल कुजुर एस0 जे0
10.	मुण्डा लोक कथाएँ	जगदीश त्रिगुणायत
11.	कुड़मी कथा – करम : बंदना गीत	घासी राम महतो
12.	परम्परागत सुन कहनी	हाँदु महतो
13.	खड़िया जीवन और परम्पराएँ	फा0 जोवाकिंग डुंगडुंग
14.	''हो'' लोक कथा : एक अनुशीलन	आदित्य प्रसाद सिन्हा
15.	बंग संस्कृति कथा	प्रसित कुमार राय चौधरी

–:–

कुड़माली भाषा साहित्य के मूर्धन्य भाषाविद्, साहित्यकार, कुडमाली व्याकरण एवं कुडमी सामाजिक सुधार आंदोलन के अग्रदूत लक्ष्मीकान्त मुतरूआर का जन्म तत्कालीन बंगाल के मानभुम (वर्तमान में झारखण्ड का बोकारो जिला) के अंतर्गत भण्डरो ग्राम में 22 अप्रेल 1939 ई0 को हुआ।

राखाल महतो एवं बुचि महताइन के ज्येष्ठ सुपुत्र लक्ष्मीकान्त अपने प्रारंभिक जीवन से ही शिक्षा, संस्कृति, निज भाषा तथा सामाजिक उत्थान के प्रति समर्पित रहे। अपने व्यस्त अध्ययन – अध्यापन एवं गृहस्थ जीवन के बीच भी समाज सुधार एवं कुडमाली साहित्यिक – सृजन के प्रति सदैव प्रयासरत रहे। इस महान व्यक्तित्व को एक कुडमाली कवि, संस्कृतिकर्मी, लेखक तथा समाज सुधार के जागरूक पुरोधा के रूप में जाना जाता है।

बालिका विद्यालय के साथ–साथ अन्य कई शैक्षणिक / सांस्कृतिक संगठनों के साथ–साथ शिवाजी समाज के द्वारा समाज को सुदृढ़ करने के साथ–साथ इन्होने ब्राह्मणीय कर्म–काण्डों, दहेज, नारी–अशिक्षा के विरूद्ध अपनी प्रबल आवाज बुलंद की।

अपनी लेखनी के माध्यम से इनके ओजस्वी लेख टउआ, हेलक, कुडमाली, शालपत्र, झारखण्ड वार्ता, सारहुल जैसे पत्र–पत्रिकाओं मे प्रकाशित होते रहे। 1977 ई0 से राँची विश्वविद्यालय के जनजातीय एव क्षेत्रीय भाषा विभाग के उपदेष्टा समिति के सदस्य रहे लक्ष्मीकान्त मुतरूआर की उत्कृष्ट रचनाओं में जनजाति परिचिति (तुलनामुलक अध्ययन), कुडमाली भाडअर (व्याकरण), कुड़माली साडा आडाग (शब्दकोष), जनजाति कुडमी (परम्परा, जनजीवन संस्कृति), कुडमाली भाषा तत्व प्रमुख हैं जो विभिन्न विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम मे शामिल हैं। इनके कई अप्रकाशित मौलिक रचनाएँ भविष्य में प्रकाशित होने की उम्मीद है जो मील का पत्थर साबित होंगे।

इस महान व्यक्तित्व ने 26 सितम्बर 2012 ई0 को सदा–सदा के लिए विदा ली।

महेश मुतरूआर
भण्डरो, बोकारो
(झारखण्ड)

ISBN - 978 93 902421-8-4

आदि कुड़मि युवा शक्ति (AKYS)
E-mail : akys.info@gmail.com